हिन्दु शब्द की वैदिकता

अथवा

हिन्दु शब्द का महाभाष्य

'हिन्दुधर्म' का निरूपण हो चुका है, अब हिन्दु शब्दकी वैदिकता या प्राचीनता पर प्रकाश डाला जाता है।

भारतका नाम वेदमें 'सप्तसिन्धु'या संक्षिप्त नाम सिन्धु' आया है, आर्यावर्त या भारतवर्ष नहीं। इसी 'सिंधु' का दूसरा रूप 'हिंदु' है। यहा पर 'स' को 'ह' वैदेशिक वा असंस्कृत न समझना चाहिए। 'स' को 'ह' पढ़ना अस्मद्देशीय भी है, हिन्दीभाषिक तथा संस्कृत भाषिक भी है। प्रत्युत वेदकालीन भी है। 'श्रीसनातनधर्मालोक' के पाठकगण इस पर निम्न पंक्तियां देखें—

१—मुलतानी भाषा में 'सर्वे' का अपभ्रंश 'सब्बे' भी है 'हब्बे' भी। 'आषाढ' का उच्चारण वहाँ पहले 'आसाढ' हुआ फिर 'हाड' हुआ। 'पौष' का अपभ्रंश वहाँ पूर्व 'पोस' हुआ, फिर 'पोह'। 'माघ' पहला उच्चारण वहां 'मास' होकर फिर 'मॉह' हुआ। श्वसुर का मुलतानी भाषा में 'सोहरा' कहा जाता है, यहां पर 'स' का ही विपरिणाम 'ह' है। 'घास' को 'घाही' कहते हैं, 'श' को 'स'' फिर ह' हुआ। मुलतानी भाषा संस्कृत भाषासे हिन्दी भाषाकी अपेक्षा अधिक मिलती है--यह कभी फिर लिखा जायगा। दश' का मुलतानी उच्चारण 'दस' होकर फिर 'दह' हुआ। 'विंशति' का उच्चारण वहाँ 'वीस' होकर फिर 'वीह' हुआ। वहीं 'स्नुषा' को 'नूंह' कहा जाता है, यहाँ पर 'न' तो पूर्व आ-गया, और 'स' अक्षर 'ह' होकर पीछे चला गया। इससे सिद्ध होता है कि—'स' का 'ह' उच्चारण 'देशी' भी है।

२—कई विद्वान् वेदों का आविर्भाव 'सिन्धु' तट पर मानते हैं, उसके देश 'सिन्ध' की भाषा के भी कई शब्द देखिए-'श्वसुर' को सिन्ध

देश में 'सहुरो' कहते हैं, 'विश्वास' को 'वेसाहु' तथा 'प्रविश' को 'पइ' कहते हैं। 'उ' को पीछे जोड़ना सिन्धी शैली है; इन सिन्धी शब्दों में 'स' को 'ह' बोला जाता है। इससे स्पष्ट है कि—यहाँ पर भी 'स' का 'ह' उच्चारण वेदके प्रभावसे हुआ।

३—पंजाबी भाषा लाहौर आदिमें 'पैसा' को 'पैहा' इस रूप में कहा जाता है। इस प्रकार 'एषः' का वहाँ पर 'एसो' होकर 'एहो' इस रूप में विपरिणाम होगया। इस प्रकार 'पंजाबी' के अन्य शब्द भी सम्भव हैं। करनाल, रोहतक आदिके ग्रामोंमें 'है' को 'सै' कहा जाता है। राजपूताना में 'सागर' को 'हागर' कहा जाता है। जोधपुर (मारवाड़) में 'सुनो' के स्थान में 'हुणो' कहा जाता है। इसी तरह यहाँ 'सारा' साग, सीरा, सालगराम, सर्दी सीता, आदि को हारा, हाग, हीरा, आदि रूप मे पढ़ा जाता है। इनका उच्चारण यहाँ आधा हकार तथा अस्पष्ट सकार किया जाता है। 'एन इन्ट्रोडक्शन टू कम्पेरेटिव फिलोलाजी' इस पी० डी० गुणे से बनाई हुई अंग्रेजी पुस्तक (१९१८ के ३२ पृष्ठ में लिखा है—'सप्त' यह संस्कृतमें है, 'सात' यह मराठी भाषा मे है, 'हात' यह गुजराती भाषामे है। 'सार्ध' यह संस्कृत भाषामें हैं। 'साडे' यह मराठी भाषा में है, 'हाडा' यह गुजराती भाषा में है। महाराष्ट्र शब्दके अपभ्रंशमें 'महा' का रह गया 'म' राष्ट्र का होगया 'रहटा'। मरहटी में यह 'ह' 'ष' के 'स' का है इस प्रकार सकारका हकार उच्चारण देशी सिद्ध हुआ।

४—अब प्राचीन हिन्दीभाषाको देखिए- 'तुलसी रामायण' (राम-चरितमानस) में लिखा है—'केहरि कन्धर बाहु विशाला' (बालकाण्ड,-छठा विश्राम, ९ वीं चौपाई) यहाँ पर 'केसरी' का ही दूसरा रूप 'केहरी' है। सूरदास आदि 'पाषाण' को 'पाहन' लिखते हैं। यहां पर 'ष' का 'स' होकर 'स' को 'ह' हुआ। इसी प्रकार एक स्थानमें 'अनुसरहि' के स्थान में 'अनुहारी' लिखा है। इसी प्रकार 'ऊधो मन

तों एकै श्राहि' यहां पर 'श्राहि' यह 'आसीत्' वा अस्ति का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ 'है' अथवा 'था' है। इसी प्रकार पद्मावतने 'सृष्टि' के स्थान 'सिहिटि' का प्रयोग किया है। 'स'का सो होकर विपरीतता में 'श्रोह' बना पुरानी हिन्दी में। एतद्रादिक स्थलोंमें 'स' वा 'ष' का 'स' होकर फिर 'ह' उच्चारण हुआ है।

५ अब आज कलकी हिन्दी देखिए—इसमें 'स्नान' का 'नहाना' हो गया है। यहां पर 'स' 'ह' रूपमें परिणत होकर 'न' के पीछे होगया। इसी हिन्दी भाषामें 'मास' को 'माह' अथवा 'महीना' कहा जाता है। एकादश, द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश, पंचदश, षोडश, सप्तदश, अष्टादश, इन शब्दों में 'श' का 'स' और फिर 'ह' होकर ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सोलह, सत्रह, अठारह' यह विपरिणाम हो गया है, इससे 'स' के 'ह' उच्चारण में वैदिकता स्पष्ट प्रतीत हो रही है। 'अस्ति सकारमातिष्ठते' इस महाभाष्यके सिद्धान्तके अनुसार 'अस्ति' 'स' रूप है। उसी 'स' रूप 'अस्' के स्थान में 'है' पढ़ा जाता है। 'पुष्प' के स्थान में हिन्दी में कहीं 'पुहप' शब्द दीखता है। यहाँ 'ष' का 'स' होकर 'स' फिर 'ह' हो गया। 'अस्मान्' का विकृत 'हमें' है; यह 'ह' 'स' का है। 'सः' का 'वह' 'सन्ति' का 'हैं' 'संग्रामें' का 'हंगामा' यह सब 'स' का 'ह' होजाना सिद्ध कर रहे हैं। छापने वाले भी 'स' के स्थान 'ह' छाप दिया करते हैं। ये सब 'स' के 'ह' रूपमें विपरिणाम हैं।

६—अब प्राकृत भाषाकी ओर आइए। उसमें भी कहीं-कहीं 'स' को 'ह' देखा जाता है। 'चतुर्दश' शब्द में 'श' का 'स' उच्चारण प्रसिद्ध ही है। युक्तप्रान्त तो इस उच्चारणकेलिए प्रसिद्ध ही है। उसीका प्राकृत में 'चउद्दह' इस प्रकार 'स' के स्थान में 'ह' उच्चारण मिलता है। इस प्रकार 'अस्मि' के स्थान पर प्राकृतमें 'म्हि' प्रयुक्त होता है, यह 'ह' × स्पष्ट ही 'स' का विपरिणाम है। ध्वनिकार आनन्दवर्धनाचार्यसे

× इसी तरह 'प्रश्नः' का 'पहण' का विष्णुका 'विण्हु' विस्मय-का 'विम्हय' 'असौ' का 'अह' अस्मान्का अह्मे, 'दिवस' का दिव हो।

प्रणीत 'देवीशतक' में संस्कृत-प्राकृत उभय भाषाश्लेषके उदाहरणात्मक पद्यमें 'मह देसु रसं धम्मे' यहां पर 'मम देहि रसं धर्मे' यह संस्कृत पाठ है। यहां पर 'देसु' का 'देहि' यह दिखलाई देता है यहां भी 'स' का 'ह' उच्चारण स्पष्ट ही है। इसी प्रकार 'अस्मादृशानाम्' की प्राकृत 'अह्मारिसाणं' तथा 'युष्माकम्' की 'तुह्माणं' एवं 'अस्माकम्' की प्राकृत 'अह्माणम्' है। मृच्छकटिकमें 'स्नातोहम्, की प्राकृत 'ह्णादेहम्, (१।१) है। शाकुन्तलमें ७म अंक में तापसी 'विस्मितास्मि, के स्थान 'विह्मिदह्मि, यह प्राकृत बोलती है। 'उष्णं' की प्राकृत 'उह्म (२।१) नागानन्दमें है। यहां 'ष'के स, का ही'ह,है 'ग्रीष्मे'की प्राकृत शाकुन्तलके ३य अंकमें 'गिह्मे' भ है है। स्वप्नवासवदत्तमें ४अंक में चेटी 'स्नः' के स्थान 'ह्णः' कहती है। ३य अङ्क में 'स्नापयति' के स्थान में 'ह्णावेदि' कहती है। ४ अङ्क में 'स्नात' की प्राकृत 'ह्णाद' आई है। द्वितीयाङ्क में वासवदत्ता, तूष्णीका' के स्थान 'तुह्णीआ' कहती है। ५ अङ्क में 'उदक स्नान' के स्थान में उदक ह्णाण कहा है। यहां सर्वत्र 'स'को 'ह' दीखता है।

७--अब 'आलोक' के पाठकगण संस्कृतके व्याकरणकी ओर आएं। 'स' और 'ह' ये दो अक्षर बाह्य प्रयत्नोंमें 'महा-प्राण' समान हैं। आभ्यन्तर प्रयत्न भी दोनोंका 'ईषद्विवृत' समान ही है। वर्णमालामें श, ष, स, ह, यहां पर 'स' और 'ह का 'साहचर्य' तो प्रत्यक्ष ही है। व्याकरण में 'सेर्ह्यपिच्च' (पा० ३।४।८७) इस सूत्रमें भी 'सि' को 'हि' देखा गया है। 'ह एति' (पा० ७।४।५२) सूत्रमें भी 'स' को 'ह' देखा गया है। अस्मद् शब्द के सु में 'त्वाहौ सौ' से 'अस्म' को 'अह' हो गया है। यहां 'स' को 'ह' करना स्पष्ट है, जिससे 'अहम्' बना और हिन्दी में 'अ' हट कर 'हम' रह गया। इसीलिए 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक के 'स्वमहतो माप्रसरः' (४।१६) इस पद्य में 'माप्रहरः' इस प्रकार 'स' के स्थान में 'ह' का पाठभेद मिलता है।

८-अब वेदकी ओर आना चाहिए। वेदमें भी कहीं 'स' को 'ह' देखाजाता है। 'निघण्टु' (१।१२) में 'सरित्' यह नाम नदीका है; वैसे

ही 'हरितः' भी नदी का नाम माना गया है। वेदमें भी उसका प्रयोग मिलता है—'हरितो न रंह्याः' (अथर्व० २०।३०।४) 'यं वहन्ति हरितः-सप्त' (अथर्व० १३।२।२५)। इस प्रकार 'हरितः' सरितः, में अर्थभेद नहीं। इसी प्रकार 'निघण्टु' (१।१३) में 'सरस्वत्यः' भी नदियोंके नामों में आया है 'हरस्वत्यः' भी। अब 'हरस्वती' शब्द को देखिये—'तं-ममनु' दुच्छुना हरस्वती' ऋ० २।२३।६। इसी प्रकार वेदमें 'सिरा' का का 'धमनी' (नस-नाडी) अर्थ है। इसी अर्थमें 'हिरा.' यह पाठ भी दीखता है। जैसे कि 'इमा यास्ते शतं हिराः' (अथर्व० ७।३५ २) हिराः-नाडियाँ। 'शतस्य धमनीनां' सहस्रस्य 'हिराणाम्' (अथर्व०-१।१७।३)। 'अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः' (अथर्व० १।-१७।१ यहां पर 'निरुक्त' (पं० शिवदत्त सम्पादित) के १८० पृष्ठ की टिप्पणी में 'हिराः-सिराः, यह पाठ भी लिखा है। इससे स्पष्ट है कि 'सिन्धु' में 'स' के स्थानमें हकारघटित 'हिन्दु' यह पाठ भी वैदिक कालसे चला हुआ है; मुसलमानी कालसे नहीं।

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ' (३१.२२) यह मन्त्र शुक्लयजुर्वेद में है। 'श' का उच्चारण 'स' और 'श्री' का उच्चारण 'सी' इस रूप में उत्तर प्रदेश तथा देहली प्रान्त आदिमें सुप्रसिद्ध ही है। उस 'स' का अन्य वेदमें 'ह' भी पाठ दिखलाई देता है। उक्त मन्त्र 'कृष्णयजु-र्वेद' के 'तैत्तिरीयारण्यक' में 'ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'। (३.१३) इस रूप में आया है। तब स' को 'ह' पढ़ने में जहां देशकता, हिन्दी-भाषिकता, प्राकृतिकता, सांस्कृतिकता सिद्ध है; वहां पर वैदिकता भी सिद्ध हुई। हां, इतना अवश्य है कि 'स' को 'ह' पढ़ना भी क्वाचित्क है, सार्वत्रिक नहीं। कहीं उसकी व्यवस्था है, कहीं नहीं। इसी कारण 'सत्यं' के स्थानपर 'हत्य' आदि नहीं पढ़ा जाता। वेद की सभी ११३१ सहिताओं में ६-१० संहिताओं के अतिरिक्त अन्य संहिताएं प्राप्त नहीं होतीं, अन्यथा वहां 'सिन्धु' के स्थान में कहीं 'हिन्दु' पाठ भी मिल

जाता, क्योंकि—'नह्यमूला जनश्रुतिः'। फिर 'हिन्धु'के स्थान में 'हिन्दु' यह पाठ तो लोक-प्रसिद्धि है, 'घुणाक्षरन्याय'से वहभी संस्कृत होगई। जैसे कि 'प्रहलाद' की प्रसिद्धि 'प्रल्हाद' इस प्रकार लकार घटित होगई, जब कि-रेफ-घटित ही उसका नाम प्राचीन पुस्तकों में आता है।+

९ इधर वादियों के अनुसार भी जब सृष्टिके आदिमें हिन्दु जातिके अतिरिक्त कोई जाति नहीं थी, यह फारस, अरब आदि के मुसलमान भी पहले हिन्दुही थे; फिर मतभेदके कारण, वा धर्मभ्रष्टतासे अथवा अपभ्रंश रूप म्लेच्छतासे वे मुसलमान होगये; तब उन्होंने भी जो 'सिन्धु' में 'स' को 'ह' कहा, उसमें हिन्दुप्रभाव ही मूल समझना चाहिये। उनका स्वतन्त्र प्रभाव इसमें नहीं माना जा सकता। जब वे अपनी पृथक् सत्ता नहीं रखते थे: तो 'स' के स्थान 'ह' भी नूतन रूपसे कहाँसे ला सकते थे, अतः स्पष्ट है कि 'हिन्दु' शब्द वैदेशिकोंकी स्वतन्त्र कृति नहीं।

१०—जो कि, यह कहा जाता है कि- भारतीय तो अब भी 'सिन्धु' को 'सिन्ध' और 'सिन्ध' देश के निवासियोंको 'सिन्धी' कहते हैं। यदि यह हमारा ही अपभ्रंश होता, तो इन्हें 'हिन्दी' तो कहते; अतः यह वैदेशिक है' यह वादियोंकी युक्ति वादियोंके पक्षको स्वयं काट रही है। यदि वे

+जैसे कि 'अथर्ववेद' में 'विरोचनः प्राह्रादिः' (८।१०।४।२) श्रीमद्भागवतमें 'प्रहलादोभून्महाँस्तेषाम्(७।४।३०)परन्तु लोकमें 'प्रहलाद' इस प्रकार लकार- घटित प्रसिद्धि हो गई। यह भी घुणाक्षरन्याय से संस्कृत होने से परिवर्तित नहीं की जाती। इसी प्रकार वेदके मन्त्रभाग में 'वेन' के पुत्र का नाम 'पृथी' (अथर्व० ८।१०+४।११) मिलता है; परन्तु वेदके ब्राह्मण भाग में 'पृथु'- (शतपथ ५।३।५।४) तथा पुराणोंमें भी 'पृथु' (श्रीमद्भागवत ४।१३।२०) मिलता है। इस प्रकार 'हिन्दु' यह नाम भारतवर्ष का है। इसे ह्रस्व लिखना चाहिये—'हिन्दु' दीर्घ 'हिन्दू' नहीं। मूलशब्द 'सिन्धु' है।

'सिन्धु' का स्थानी 'हिन्दु' वैदेशिक मानते हैं; तो वैदेशिक लोगोंने भी 'सिन्ध ग्रहाता' तथा 'सिन्धी'को 'हिन्द ग्रहाता' तथा 'हिन्दी' क्यों नहीं कहा? 'स्थान' को आपके अनुसार 'हूनान' न कहकर 'स्तान' क्यों कहा इससे स्पष्ट है कि- 'स' को 'ह' इस शब्दमें वैदेशिक नहीं। यदि 'स' को 'ह' कहना वैदेशिकोंकी स्वाभाविक प्रवृत्तिहै; तो उन्होंने 'ईसामसीह'को 'ईहामहीह' क्यों नहीं कहा? 'मूसा पैगम्बर को 'मूहा' क्यों नहीं कहा? वे 'संस्कारविधि' को हंस्कारविधि, क्यों नहीं कहते? 'सिन्धदरिया' को 'हिन्द दरिया' क्यों नहीं कहते? अतः स्पष्ट है कि- यह युक्ति इस विषय में सङ्गत नहीं। इसी प्रकार 'माल्कसन' से बनाई 'अकबर' पुस्तकके३८वें पृष्ठमें "ऐ बाबर! तुझे सिन्ध और हिन्द राज्य दिये हैं" और 'तारीख फिरोज शाही' ग्रन्थमें हिन्द और सिन्धके सारे मुल्क' यह पाठ कैसे आया? अतः वादियों की उक्त युक्ति व्यर्थ है।

अन्य प्रकार।

११—अथवा इस विषयमें यह भी कहा जा सकता है कि 'सिन्धु 'सिन्' शब्द से बना है 'सिन्' का अर्थ 'इन्दु' अर्थात् चन्द्रमा है। इसलिए 'सा दृष्टेन्दु सिनीवाली, (अमरकोष १।४।६. इस प्रमाणमें दृष्टचन्द्रा अमावास्याकानाम 'सिनीवाली' है; जिसका वेदके 'सिनीवालि! पृथुष्टुके' (ऋ० २।३२।६) 'तस्मै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन' (२।३२।७) 'या सिनीवाली या राका' (ऋ० २।३२।८) इन मन्त्रोंमें निरूपण है। दृष्टचन्द्राऽमावास्या सिनीवाली' यह सायण (२ ३२।६) में लिखता है 'सिनीवाली' की व्युत्पत्ति करते हुए 'अमर कोष' की व्याख्यासुधामें कहा है-"एन-विष्णुना सह वर्तते सा सा लक्ष्मीतद्योगात्‌सिनी-चन्द्रकला'। इसी प्रकार मुकुटने भी 'सिनी' का अर्थ 'चन्द्रकला' लिखा है। निरुक्तकार श्री-यास्क भी 'सिनीवाली' का 'वालेनेव अस्यामणुत्वात् चन्द्रमाः सेवितव्यो भवतीति वा' (११'३१।२) यह कहकर 'सिन्' का अर्थ 'इन्दु' 'चन्द्रमा' बताते हैं। सिन्धु नाम भी समुद्र का चन्द्रमा धारण करनेसे सम्भव है- 'सिन्'-धुः'। अमृतमंथन के समय उस (चन्द्रमा) की उत्पत्ति

समुद्रसे प्रसिद्ध हैं. समुद्र चन्द्रमा को देखकर उछलता भी है। 'सिन्धु' यह नदीविशेष का नाम भी समुद्र जैसी विशालता या दुरन्तता देख कर रखा हो यह भी सम्भव है। इस देश के लोग सिन्‌ (इन्दु) के व्रती भी थे, चान्द्रायण व्रत हमारे देश में बहुत प्रसिद्ध रहा है चन्द्र-दर्शन पर चन्द्रमा को हिन्दु नमस्कार भी करते हैं। इसी 'सिन्' (इन्दु) को चान्द्रायण आदि व्रत द्वारा धारण करने से इस देश को 'सिन्धु' (सिन्‌-धु) अथवा (इन्दु) भी कहा जाता रहा। चीनी ह्वेनसांग ने भी 'भारत' का पुराना नाम 'इन्दु' माना है। 'वाल्मीकिरामायण' में सिन्धु नदीका नाम भी 'इन्दुमती' लिखा है। इसी इन्दु को बिगाड़ कर यूनानियों ने 'सिन्धु' का नाम 'इण्डस्' और हमारा नाम 'इण्डियन' रखा।

१२—इस प्रकार 'सिन्धु' या 'इन्दु' से भी इस देशका 'हिन्दु' बनना स्वाभाविक है। देशके नामसे ही जातिका नाम होने से हमारी जातिका नाम भी 'हिन्दु' हुआ। इसी जातिके उपास्य देव महादेव उस 'इन्दु' को माथे पर रखते हैं। 'सिन्धु' शब्द नदीका पर्यायवाचक भी हुआ करता है। वे महादेव 'सिन्धु' (गंगा) को भी सिर में रखते हैं। 'देवो भूत्वा देवान् एति' (शतपथ १४।६।१०।४) इस सिद्धान्तसे महादेवकी उपासक जातिने (मुहंजोदाड़ो और हडप्पाकी खुदाई में शिवलिंग बहुत मिले, यह सभ्यता वैदिककालसे भी प्राचीन मानी जाती है) अपने उपास्यदेवके सिर-माथे में ठहरे 'सिन्धु इन्दु' का प्रायश्चित्तों के लिए गंगाजलके जलका उपयोग करके तथा चंद्र-रात्रि आदिमें नमस्कार आदिसे जहां आदर करना जारी रखा, वहीं उसके नाम 'इन्दु' या 'सिन्‌-धु' को अपने सिर-माथे रखा। उसी 'इन्दु' या 'सिंधु' का दूसरा रूप 'हिंदु' हुआ। अथवा ऋग्वेदानुसार 'इन्दु' सोमका नाम है। हिन्दु जहां चन्द्र प्रेमी थे वहां याज्ञिक तथा सोमरस के प्रेमी भी थे। सोमयज्ञ-प्रेमी होनें

से भी उनका नाम 'इन्दु, तथा फिर 'हिन्दु हो गया। 'इन्दु' में पहला अक्षर 'इ, है। 'इ, में 'अ' अक्षर भी व्याप्त है। माण्डूक्योपनिषद् (१ में 'ओम्, की व्याख्या करते हुए 'अ, को सब में प्राप्त व्याप्त तथा सबकी आदि माना है। ऐतरेयारण्यकमें भी कहा है; अंकारो वै सर्वा धाक्, (२।३ ६) तब 'इन्दु, में 'अ, इन्दु, समझना चाहिये। इस लिए महाराष्ट्र आदिमें इ, को 'श्रि, इस प्रकार लिखते हैं। 'अकुहविसर्जनी-यानां कण्ठः, से, 'अ, और 'ह, में कण्ठ स्थानका साम्य है तो 'इन्दु का 'अिन्दु' होकर 'हिन्दु, हुआ। वैदिक कालमें भी 'सिन्' के 'हिन्' वा 'हिं' उच्चारण का मूल 'शतपथ ब्राह्मण' में भी मिलता है। यहां लिखा है--'हिं कृत्वा अन्वाह, न असामा यज्ञोस्ति इति वै आहुः। न वा अ हिंकृत्य साम गीयते" प्राणो वै हिंकारः (१।४।३।१-२)। यहां 'हिं, को यज्ञका प्राण-जीवनाधायक माना गया है। इस प्रकार याज्ञिक इस हिंदु जातिने भी इस 'हिं' को जीवनाधायक होनेसे अपनाया। पदार्थके सिद्ध प्राणप्रद धर्मका नाम ही 'काव्यप्रकाश' आदि में 'जाति' कहा है। 'हिं' का उच्चारण बिना किए वे सामवेद का उच्चारण नहीं करते थे, और बिना सामवेदके गाये यज्ञ नहीं होता था, तब याज्ञिक जातिका नाम भी 'सिन्' वा 'हिं' धारण करने से 'सिंधु' वा 'हिंधु' वा हिंदु' हुआ। 'दा' धातु का भी 'धारण' अर्थ होता है, जैसे कि 'निरुक्त' में लिखा है—दण्डो ददतेर्धारयतिकर्मणः। 'अक्रूरो ददते मणिम् इत्यभिभाषन्ते (२।२।११) 'चतुरश्चिद् ददमानात्' (निरुक्त० ३।१६।१) यहां पर भी 'दद' का 'धारण' अर्थ किया गया है। 'हिं' को 'दु' धारण करने वाली जाति 'हिन्दु' कहलाई।

अन्य प्रकार

१३—इधर उस 'हिं' को गाय भी कहती है। यह हिंदु जाति वैदिककालसे गायकी भक्त चली आरही है। गायका 'हिं' करनेको बतलाने वाला एक मन्त्र वेदमें इस प्रकार आया है—

'हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसुनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहाम श्विभ्यां पयो अघ्न्या इयं सा वर्धतां महते सौभगाय' ॥
(ऋ० १।१६४।२७, अथर्व० ९।१०।५)

इस गोवर्णनपरक मन्त्र में पूर्वार्ध का आदिम वर्ण 'हिं' है, यही यज्ञका जीवनाधायक है, यह पूर्व कहा जा चुका है, गाय भी यज्ञका अङ्ग है, अतः उसने भी 'हिं' को धारण किया। इस मन्त्रके उत्तरार्ध का आदि वर्ण 'दु' है। ये ही दो वर्ण 'हिं-दु' यज्ञभक्त एवं गोभक्त इस जातिने प्रतीकरूपमें स्वीकृत किये। जैसे यज्ञ साम के बिना नहीं किया जाता, और साम 'हिं' के बिना नहीं गाया जाता, अतः इस याज्ञिक जातिने 'हिं' को धारण किया, वैसे ही इस जातिका काम भी गाय के बिना नहीं चलता। अतः इस जातिने यज्ञ तथा गाय दोनोंका चिह्न होने से 'हिं' शब्दको धारण किया, प्रत्युत यह जाति उस 'हिं' के संस्कारको अपने छोटे बच्चोंके कानमें भी जन्म से डालती है। जैसे कि--'प्रजापतेष्ट्वा हिंकारेण अवजिघ्रामि, गवां त्वा हिं कारेण, सहस्रायुषा जीव, शरदः शतम् (पारस्कर गृह्यसूत्र १।१८।-३-४)

इस जातिका गोप्रेम देखिये- जब यह जाति भोजन करने बैठती है, तो गोग्रास सबसे पूर्व रखती है। मरनेके समय वैतरणीपारार्थ गोदान वा गोपूजन प्रसिद्ध है। पहला श्राद्ध भी गायको ही खिलाया जाता है। इस जातिमें 'गोस्वामियोंकी' उच्चता तथा भगवान् कृष्णकी उपासना भी गौओंके कारणसे है। 'गोलोक' हिन्दुओंके लिए एष्टव्य लोक है। शुद्धि प्रायश्चित्त आदिमें 'गाय' के 'पंचगव्य, का ही उपयोग होता है' दूसरे पशुओंको अहन्तव्य न कह कर गायको ही 'अघ्न्या' कहा जाता है। इसी लिए ही हिन्दुओंके मुसलमानोंसे झगड़े होते हैं। गोशब्द आदि वाली सब्जियाँ भी प्रायः नहीं खाई जातीं। अन्यभी हिन्दु जातिको गायके विषयमें बहुत ही श्रद्धा है; जैसे कि- दूसरेका का खेत खा रही गायका दूसरेको वृत्त न कहना आदि। इन बातोंको छोड़िये,

हिन्दुओंकी स्थिरताकी मुख्य वस्तु वर्ण या जाति है, जिसका विचार कर विवाह या उपनयन आदि हुआ करते हैं; उस जाति या वर्णका सङ्केत सूचक शब्द 'गोत्र, भी इस प्रकार गायके नामसे रखा गया है।

तब उसी गायके मन्त्रके पूर्वार्ध- उत्तरार्धके आरम्भिक वर्णोंको प्रतीकरूपसे स्वीकार कर गोभक्त तथा वेदभक्त 'हिन्दु, जातिने वेदके एक एक अक्षरके स्वीकार कर लेनेमें भी अपनी श्रद्धा दिखला दी है। ठीक भी है- 'सर्वेषां स तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्। वेद-शब्देभ्य एवादौ पृथक् संथाश्च निर्ममे , (मनु १।२१) इस पद्यसे प्रतीत होता है कि- परमात्माने वेदके शब्दोंसे ही सब जातियोंके नाम, कर्म तथा आकृतियाँ बनाई; क्योंकि वेदका एक-एक अक्षर भी अव्यर्थ है। जैसे तीन वेदोंसे एक-एक अक्षर लेकर परमात्माने 'ओम्,(अ, उ, म् बनाया; एक-एक शब्द लेकर तीन व्याहृतियाँ- एक-एक- पाद लेकर गायत्री बनाई। इसके लिए देखिए 'मनुस्मृति२।७६' ऐतरेय ब्राह्मण१। ३२' गोपथ ब्राह्मण १ १।६) इस प्रकार 'अर्थ्यां वाव विद्यायां सर्वाणि भूतानि, शतपथ० १०.४ २ २१) के अनुसार, हिन्दु, शब्दकी निष्पत्ति भी वैदिक जाननी चाहिये।

१४—इन दोनों वर्णों (हिं--दु) में उक्त मंत्रके अवशिष्ट वर्णों का व्यवधान भी नहीं जानना चाहिए। 'न्यायदर्शन' में कहा है— 'यस्य येनार्थसम्बन्धो दूरस्थस्यापि तस्य सः। अर्थतो ह्यसमर्थानामानन्तर्यमकारणम्। (३१-१६) जिससे जिनका अर्थसम्बन्ध होता है; वह दूरस्थित (व्यवहित) का भी हो जाता है। जिनका आपस में- सम्बन्ध नहीं, उनकी निकटता भी सम्बन्ध करनेवाली नहीं होती। जैसे कि 'मीमांसादर्शन' के' शाबर भाष्यमें भी कहा है—'असत्यां हि आकांक्षायां सन्निधानमकारणं भवति, यथा--भार्या राज्ञः पुरुषो देवदत्तस्य ('६।४।२३) यहां पर 'राज्ञः पुरुषः' की निकटता होते हुए भी अर्थ सम्बन्ध न होने से समास नहीं होता।' इस प्रकार इसे अर्थापत्ति

से सिद्ध हुआ कि—'सत्यां हि आकांक्षायाम् असन्निधानमपि सम्बन्धकारणं भवति'।

इस प्रकार 'हिं-दु' इन दो अक्षरोंके 'अ, उ, म्' के इकट्ठा करनेसे बने हुए 'ओम्' की तरह, इकट्ठे बने हुए 'हिंदु' शब्द का प्रामाण्य भी सिद्ध हुआ। वैदिक साहित्यमें ऐसे शब्दोंकी कमी नहीं। जहां पर इताद्' अक्तात्, नीतात् (एतेरकारः, अनक्तेर्गकारः, नीञो-निकारः' (निरुक्त ७।१४।६) इन तीन धातुओंके एक एक अक्षरसे 'अग्नि' शब्द व्युत्पादित किया जाता है, जिस वैदिक साहित्य में 'भर्ग' का 'भ' इति भासयति इमान् लोकान्, 'र' इति रंजयति इमानि भूतानि, 'ग' इति गच्छन्त्यस्मिन्, आगच्छन्ति अस्माद् इमाः प्रजाः, तस्माद् भ-र-गत्वाद् भर्गः, मैत्रायणी-आरण्यक ६।७) इस प्रकार अक्षरार्थ किया जाता है, जिस वैदिक साहित्यमें 'मख' शब्दका अक्षरार्थ या व्युत्पत्ति 'मख इत्येतद् यज्ञनामधेयम्, छिद्रप्रतिषेध सामर्थ्यात् छिद्र खमित्युक्तम्, तस्य मा-इति प्रतिषेधः, मा यज्ञे छिद्रं करिष्यति' (गोपथ ब्रा० २।२।५) इस प्रकार दीखती है और समुदित करके सिद्धि होती है; उसी प्रकार वेदके एक मन्त्रके पूर्वार्ध--उत्तरार्धके आदिम एक-एक से निष्पन्न उक्तमन्त्रके प्रतीक 'हिन्दु' शब्दके विषयमें भी जान लेना चाहिए।

ऐसी बात कालिदासके विषयमें भी प्रसिद्ध है। उसने 'अ' प्र, शि, ख' का अनेन तव पुत्रस्य, प्रसुप्तस्य वनान्तरे। शिखामादाय सहसा खड्गेनोपहृतं शिरः' इस प्रकार अर्थ निकाला था। आजकल भी ऐसी परिपाटी मिलती है। जैसे एन. डबलू. आर, ई. पी. आर, ई. आई. आर, टी. टी, डी. टी. एस, डी. सी, आदि। मुसलमानोंने भी 'पाकिस्तान' यह शब्द भिन्न-भिन्न अक्षरों (पंजाब, कश्मीर आदि) को मिलाकर रखा था। यू. पी. सी. पी, आदि शब्द भी इसी तरह के हैं। जिस प्रकार 'उपनिषद्' में भी 'द, द, द' के 'दाम्यत, दत्त, दयध्वम्'(बृहदारण्यक ७[५]२।१--३)एक-एक अक्षरके भिन्न-भिन्न शब्दमें

बनाये गये। 'हृदय' शब्द 'हरन्ति ददति, याति' के आद्यक्षरोंसे बना; देखो शतपथ १४।८।४।१ बृहदा० ७।२।३।१ जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मणमें 'उद्गीथ' इन तीन अक्षरोंका 'सामान्येव उद्, ऋच एव गी, यजूंष्येव थम्' (२।३।५७।७—८), इत्यादि अर्थ बनाये गये हैं। 'माण्डूक्योपनिषद्' के अनुसार 'ओम्' शब्द 'आप्तेरादिमत्वाद् (अ) उत्कर्षत्वाद् उभयत्वाद् वा (उ), मिते (म्) (९।१०।११) इन समुदायोंके आद्यक्षरोंसे बनाया गया, जिस प्रकार लौकिक साहित्यमें 'होरा' शब्द 'अहोरात्र' के आद्यन्तिम वर्णको छोड़कर बीचके दो अक्षरोंसे बनाया गया। जिस प्रकार अंग्रेजीका *News* (न्यूज़) शब्द *North* (उत्तर) *East* (पूर्व) *West* (पश्चिम) *South* (दक्षिण) इन चारों दिशाओं के आद्यक्षरोंसे 'चारों दिशाओंका वृत्तान्त' इस अर्थमें बना; जैसेकि सारे व्यञ्जन 'हल्' तथा सारे स्वर 'अच्' नाममें संक्षिप्त हैं, इसी प्रकार 'हिन्दु' शब्दके विषयमें भी जान लेना चाहिये। यह भी उक्त मन्त्रके पूर्वार्ध-उत्तरार्द्ध का प्रतीक, संक्षिप्त नाम है। ऐसा प्रकार प्राचीन आर्ष शैली है। प्रत्युत यही गोपरक उक्त मन्त्र 'हिन्दुजाति' के अर्थमें समन्वित भी हो सकता है, यह सूक्ष्म विचारसे स्फुट हो सकता है; क्योंकि स्व-स्वामीका भी अभेद-सम्बन्ध हो जाता हुआ देखा गया है।

१५ जैसे तीन वेदोंके एक-एक अक्षरत्रयसे निष्पन्न भी 'ओम्' की 'अवतीति ओम्' यह व्युत्पत्ति तथा 'अवतेष्टिलोपश्च' (उणादि १।१३९) इस प्रकार सिद्धि भी वैयाकरणों द्वारा की जाती है, वैसे ही पूर्व कहे प्रकारसे सिद्ध हुए 'हिन्दु' शब्दकी प्रकारान्तरसे भी सिद्धि होती है जैसे कि—'हिनस्तीति हिन् (हिंसेः क्विप्, 'संयोगान्तस्य लोपः') हिंसं दूति—खण्डयति—इति हिन्दुः। 'उणादयो बहुलम्' (३।३।१) इस सूत्रसे बाहुलकसे 'डु' प्रत्यय तथा टि का लोप हो जाता है। स्वा० दयानन्दजीने 'आख्यातिक' में उक्त सूत्र पर ३६२ पृष्ठमें टिप्पणी दी है—'बहुवचनसे यह समझना चाहिये कि जो उणादिगणमें प्रत्यय नहीं कहे गये हैं; वे भी होते हैं'।

अन्य प्रकार

१६ अथवा 'हिमालय' पर्वतके 'हि' को तथा 'इन्दु' सरोवर 'कुमारी अन्तरीप) के 'न्दु' को लेकर पूर्व प्रकारसे 'हिन्दु' बना है। इस प्रकारकी शैलियाँ भी प्राचीन हैं। जैसे कि—'गम्' यह गणपतिका बीज-मन्त्र प्रसिद्ध है। यह बीजमन्त्र 'गणानां त्वा... सीद सादनम्' (ऋ० २।२३।१) अथवा 'गणानां त्वा...गर्भधम्' (शुक्लयजुः वा० सं० २३।१९) इस मन्त्रके आदिम तथा अन्तिम अक्षरको लेकर बना है, इस प्रकार 'हिन्दु' शब्दको भी बीजमन्त्रकी तरह द्व्यक्षरात्मक जानना चाहिये। बीजमन्त्रोंमें बड़ी शक्ति वा बड़ा रहस्य सन्निहित होता है। इस प्रकार उक्त गोमन्त्रके संकेतित दो अक्षरोंसे इस जातिका गायके संरक्षण-वर्धनादिसे सौभाग्य बढ़ सकता है' अथवा हिमालयसे लेकर इन्दु सरोवर तक हमारे 'हिन्दुस्थान' की सीमा है' यह रहस्य निकलता है—यह 'हिन्दु' को ध्यान रखना चाहिये।

विशेष रहस्य

१७ अथवा 'सिन्धु' इस (पश्चिमी पंजाबकी) नदी-विशेषके नामसे भी हमारा नाम 'सिन्धु' वा हिन्दु हुआ, यह नदी हमारी स्वाभाविक सीमा थी, इसी प्रकार 'सिन्धु' समुद्र भी हमारी स्वाभाविक सीमा था। इसीसे जाकर हम लोगोंके पूर्वज विदेशों पर आधिपत्य करके हमारे देशकी वा अपनी जातिकी कीर्तिको उज्ज्वल करते थे; और इन्हीं सीमाओंसे वैदेशिकोंका भी हमारे देश पर आक्रमण करनेका मार्ग था, अतः हमारी जाति इस बातको भलीभांति याद रखे कि इन्हीं सीमाओं को काबू करके अपने आप पर आक्रमण न होने दे, अब पश्चिमी सिन्धु (करांचीका समुद्र) तथा फिर उसके साथकी सिन्धु नदी पर आधिपत्य कर लिया जावे, तो पाकिस्तान शीघ्र मर सकता है।

इसी बात पर ध्यान रखनेके लिए हमारी जातिका नाम 'सिन्धु' रखा गया। इसीलिए 'सिन्धु' को ही हमारे सम्पूर्ण देश वा जातिका प्रतिनिधि मानकर उससे अपना वा अपने देशका नाम रखा गया।

इस प्रकार सिद्ध है कि ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यजान्त जातियोंका नाम 'हिन्दु' है। यदि अन्य पुस्तकोंमें 'हिंदु' शब्द नहीं मिलता, तो 'आर्य' शब्द भी उन सभी (अन्त्यजांत) जातियोंका नाम कहीं नहीं मिलता। वैदेशिक जातियां अपने आपको 'आर्य' कहती हैं—यह बात भी ठीक नहीं। वे अपने आपको 'अर्यन' कहती हैं, 'अर्यन' का भाव वे 'ईरान' से आया हुआ मानती हैं, जो हमें कभी इष्ट नहीं होसकता। हिन्दुस्थान ही हमारा आदि देश है—ईरान आदि नहीं।

कई साक्षियां

१८ (क) 'आर्यावर्त' शब्द वेदादिमें कहीं नहीं आता। श्रीसत्यव्रत सामश्रमीने आर्यावर्त के विषयमें यह लिखा है-'अथैतद् *आर्यावर्ताभिधानं न क्वचिदपि संहितायां ब्राह्मणे वा श्रुतमस्ति*' (ऐतरेयालोचन पृ० २०। उक्त पुस्तकके ३० पृष्ठमें श्रीसामश्रमीजीने लिखा है-'तत्त्वतस्तु एतत् त्रिसप्तनदीपरिवृतः *'सिन्धु-मध्य'* एव *आसीत् पूर्वकालिक आर्यावर्तः*'। अर्थात्-आर्यावर्त नाम किसी भी संहिता वा ब्राह्मणमें नहीं है, २१ नदियोंसे घिरा हुआ 'सिन्धु' का मध्य ही वेदकालीन आर्यावर्त था।

(ख) 'अन्तर्ज्वाला' पुस्तकमें 'अखण्ड भारत' निबन्धमें श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार महाशयने लिखा है कि—'वैदिक कालसे 'सिन्धु' शब्द 'हिन्दुस्तान' की स्वाभाविक सीमाओं 'सिन्धु' नदीसे सिन्धु (समुद्र) पर्यन्तके लिये व्यवहृत होता आया है। 'सप्तसिन्धु' नाम इस देशकी सात नदियोंके कारण रखा गया था और इसी नामसे वेदकालीन भारतको स्मरण किया जाता है'। (पृष्ठ १७)

(ग) 'हिन्दुत्व' पुस्तकमें वीर सावरकरने लिखा है—'जहां उनकी राष्ट्रीयता और संस्कृतिने सर्वप्रथम विकास पाया था; उनके प्रति कृतज्ञताभावसे उन्हें इस देशका नाम 'सप्तसिन्धु' रखनेको प्रेरित किया (पृ० ७) 'आर्य लोग उसी (वेदके) समयसे 'सिन्धु' कहलाने लगे' (पृ० ८)। 'हमारे पूर्व पुरुषोंने ही 'हिन्दु' नाम तो आदि (वैदिक) कालसे ही अपना लिया था, और संसारके अन्य राष्ट्र भी हमारे देशको 'सप्तसिन्धु' या 'हप्तहिन्दु' और हमें 'सिन्धु' या 'हिन्दु' नामसे जानते थे' (पृ० ९-१०)। 'यह सच हो तो मानना पड़ेगा कि—'हिन्दु' नाम आर्योंसे भी पूर्वका है। आदिनिवासी भी अपने को 'हिन्दु' कहते थे। संस्कृतमें 'ह' को 'स' होजानेके कारण आर्यलोग इसे 'सिन्धु' कहने लगे। मूलतत्त्व 'हिन्दु' ही है। 'हिन्दु' शब्दको अर्वाचीन माननेवालोंके पास इस युक्तिका कोई उत्तर नहीं है।' (हिन्दुत्व पृ० ११)

(घ) 'प्रोफेसर मेकडोनेल्ड' ने भी 'हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर' नामक अपनी पुस्तकमें लिखा है कि—'उधरसे आनेमें इनके सम्मुख सबसे पहले 'सिन्धु' ही पड़ती थी। इसलिये उपलक्षणसे यही नाम भारतवर्षका रखा, ग्रीक लोग सिन्धुनदसे उपलक्षित प्रदेशको 'इन्डोस' कहते थे, आगे चलकर भारतवर्षका नाम 'इण्डिया' होनेमें यही कारण हुआ। ..'ऋग्वेद' में 'सप्तसिन्धु' का कई स्थानोंपर निर्देश है। उसमेंसे एक मन्त्रमें तो यह आर्यावासका वाचक है।' (श्री पं० नरदेव शास्त्री आचार्य गुरुकुल ज्वालापुरसे प्रणीत 'ऋग्वेदालोचन' पुस्तकके १२८-१२९ पृष्ठमें)।

(ङ) भूतपूर्व शिक्षामन्त्री श्रीसम्पूर्णानन्दजीसे प्रणीत 'आर्योंका आदिदेश' पुस्तकमें लिखा है—'वेदोंमें तो 'सप्तसिन्धव' देशकी महिमा गायी है। यह देश सिन्धुनदीसे लेकर सरस्वती तक था। इन दोनों नदियोंके बीचमें काश्मीर और पञ्जाब आगये' (पृ० ९२)। 'इससे यह निश्चित है कि वेदोंके आधार पर आर्योंका अर्थात् आर्य संस्कृतिका

आदिमस्थान 'सप्तसिन्धव' ही था' (नवम अध्याय ८० पृष्ठ)। 'वेदोंमें सप्तसिन्धव' देशके अतिरिक्त और किसी देशका स्पष्ट उल्लेख नहीं है।' (पृष्ठ ८०)

(च) श्रीअविनाशचन्द्रदास एम्. ए. पी एच. लेक्चरार कलकत्ता विश्वविद्यालयने भी 'ऋग्वेदिक इण्डिया' पुस्तकमें लिखा है—'आर्य सप्तसिन्धु प्रदेश' के निवासी थे।' आजकलके वेदमें रिसर्च करनेवाले विद्वानोंकी गवेषणासे भी यही सिद्ध होता है कि—हमारे देशकी 'सिन्धु' यह संज्ञा वेदकालसे ही है। तब उस देशकी जातिकी भी संज्ञा वैदिक-कालसे 'सिन्धु' ही सिद्ध हुई। उसमें 'स' को 'ह' की देशिकता वा वैदिकता हम सिद्ध कर ही चुके हैं।

अखण्ड हिन्दुस्थान

१९—वे सातों नदियाँ अखण्ड हिन्दुस्थानको परिचायित करती हैं—'गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि ! सरस्वति ! नर्मदे ! सिन्धुकावेरि ! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु' ये भारतकी सात नदियाँ (सिन्धवः) हैं। गङ्गा-यमुना, सरस्वती ये तीन पूर्वीय भारतकी नदियाँ हैं। 'गोदावरी' पश्चिम भारतकी नदी है। 'नर्मदा' मध्यभारतकी नदी है। 'सिन्धु' पश्चिमोत्तर भारतकी नदी है। 'कावेरी' दक्षिण भारतकी नदी है। इन सात नदियोंका वैदिक नाम 'सप्तसिन्धु' है, संक्षिप्त नाम 'सिन्धु' है। उसीके आश्रयसे हमारी जातिका नाम भी 'सिन्धु' है।

२०—'यह 'हिन्दुनाम' मुसलमानोंने रखा, या दासमनोवृत्तिका सूचक है वा मुसलमान आदिने घृणासे रखा, मुसलमानोंके अत्याचारसे हमने 'हिन्दु' नाम स्वीकृत किया।' यह किन्हींका कथन निस्सार है। 'मुहम्मदी' धर्म १३०० सालोंसे पहले नहीं था, (स० प्र० १४ समु० ६४६ पृष्ठ) परन्तु 'हिन्दु' शब्द उससे भी पूर्व मिलता है। 'जिन्दा-वस्ता' पुस्तकमें जिसे आजकलके भाषातत्त्वाभिज्ञ 'ऋग्वेद' के कुछ

समयके बाद बनाया हुआ मानते हैं ...'हिन्दु' शब्द मिलता है। उसी 'शातीर' या 'जिन्दावस्ता' पुस्तकमें हमारे देशका नाम 'हिंद' कहा है। जैसे कि—'अकमन् बिरहमने ब्यासनाम अज हिन्द आमद बस दाना कि अकलचुना नस्त।' यहाँ पर व्यासजीका हिंद (भारतवर्ष) से आना कहा है। यदि मुसलमानोंसे हमें यह नाम मिलता, तो उनसे कई हजार वर्ष पूर्वकी पुस्तकमें 'हिंद' यह नाम न मिलता। इससे स्पष्ट है कि—मुसलमानोंकी उत्पत्तिसे कई सहस्र वर्ष पूर्व भी 'हिंद' आदि शब्द प्रचलित थे। श्रीसत्यव्रत सामश्रमी महाशयने 'निरुक्तालोचन' में लिखा है—'यथा इह भारते महमदीय-राज्यस्थापनात् प्रागपि अपरदेशे 'हिंदु' रिति व्यवहार आसीदेव अधार्मिकेषु। तत उत्तरं सैव (हिंदुरिति) समाख्या सदाक्रोशकृतापचरितैव अस्मासु च। ततो वयमपि 'हीनं च दूषयत्यस्माद् हिंदुः' इति 'मेरुतन्त्र व्युत्पादनमभिमत्य 'हिंदु' नाम-कथनेपि गौरवमेव मन्यामहे।' (पृष्ठ ७०)

२१—'मुसलमानोंके अत्याचारसे हमने 'हिंदु' नाम स्वीकृत किया' ऐसा आरोप भी ठीक नहीं। भारतमें मुसलमानी राज्यका मूलारोपक शहाबुद्दीन महमूद गोरी था; परन्तु इन लोगोंके अत्याचार तो दूर रहे, जब उनके पैर भी भारतमें नहीं पड़े थे और 'गोरी' पृथिवीराजके व्यवहारोंसे तङ्ग हो रहा था; तभी पृथिवीराजके सभाकवि आदिकवि चन्दबरदाईने अपने कविता ग्रंथमें इस देशको 'हिंदव' इस नामसे तथा इस जातिको सर्वत्र 'हिंदु' नामसे कहा है। 'हम हिंदु लजवान' 'गति हिंदू पर साहि सज्जि' इत्यादि 'पृथिवीराजरासो' नामक उसके ग्रन्थके उद्धरण हैं। 'भारतवर्षका बृहद् इतिहास' प्रथम भाग ३० पृष्ठमें श्रीभगवद्दत्तजीने लिखा है—'उस कालमें पृथिवीराज चौहान (सं० १२३०) के सखा और सामन्त चन्दबरदाईने अपना ग्रन्थ 'पृथिवीराजरासो' लिखा।'।

२२--'दासमनोवृत्तिसे हमने मुसलमानोंसे दिये 'हिन्दु' नामको स्वीकृत किया—' ऐसी सम्भावना भी निर्मूल है। यह बात श्रद्धेय नहीं कि—। अपने देश तथा अपनी जातिके नाम पर मर मिटने वाली राजपूत सदृश वीर जातिके आश्रित कविगण तथा इस देशकी विशाल जनता दास-मनोवृत्ति वाली थी; तथा उसने मुसलमानों द्वारा जिनके साथ उनकी बड़ी शत्रुता बढ़ चुकी थी, जिनका इस देशमें अभी बहुत प्रभाव भी नहीं पड़ा था—घृणावश दिये हुए 'हिन्दु' नामको अनायास स्वीकार कर लिया। शिवाजी मुसलमानोंके कट्टर शत्रु रहे; परन्तु उनके आश्रित कवि भूषणने भी अपनी कवितामें 'हिन्दु' शब्दका बड़े गौरवसे प्रयोग किया है—इससे स्पष्ट है कि—'हिन्दु' शब्द हमें मुसलमानोंसे नहीं मिला, किन्तु यह हमारा ही शब्द है। यह देशके नामके कारण जाति-का नाम है। यदि 'हिन्दु' को मुसलमानी अपभ्रंश भी माना जावे; तो भी मूल शब्द तो मुसलमानी नहीं; तब यह वैदेशिक कैसे हुआ? 'ऐतरेयालोचन' में श्रीसत्यव्रतसामश्रमीने भी लिखा है—'तद् इत्थमार्यावर्तस्य अयं सिन्धुमेरुदण्ड इवासीत्'। 'सिन्धु' यह हमारे देश वा नदी-का नाम फारसवाले या मुसलमानोंने नहीं रखा, किन्तु वह वेदकालमें ही प्रसिद्ध रहा। पीछे चार वर्णोंसे अपना परिचय देनेकी शैली प्रच-लित होगई; अतः इस 'सिन्धु' या 'हिन्दु' शब्दका प्रचार ढीला पड़ गया।

२३—'इससे स्पष्ट है कि—हमारे देशका वेदके अनुसार भी नाम 'सिन्धु' है। उसीके ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त आदि भिन्न-भिन्न भाग हैं। 'ऋग्वेद' के १० वें मण्डलके ७५ वें सूक्तका ऋषि 'सिधुक्षित् प्रैयमेध' माना गया है; उसका यही अर्थ है कि—सिन्धु देशका शासक वा 'सिन्धुदेश' में रहनेवाला। उस सूक्तके 'इमं मे गङ्गे! यमुने! सरस्वति! शुतुद्रि! स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे! वितस्तयार्जी-कीये! शृणुहि आ सुषोमया' (ऋ० १०।७५।५) तृष्टामया प्रथमं यातवे

सत्नूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या। त्वं सिन्धो ! कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे (ऋ० १०।७५।६) इन मन्त्रोंसे सिन्धु देशकी सीमा पर प्रकाश पड़ता है। यह याद रखना चाहिये कि—ऋग्वेदमें नदियोंके नामोंसे देशोंको सूचित किया गया है, यही प्राचीन प्रथा है। 'पंचनद' का अर्थ 'पञ्जाब—पांच नदियां' हैं; जब कि यह बड़े भारी प्रान्तका नाम है। इसी प्रकार वेदमें 'सप्त-सिन्धु' से नदियोंके नामोंसे—देशोंको सूचित किया है। ऋग्वेदके अनुसार सिन्धु देशमें या सिन्धु स्थानमें निम्नलिखित देश थे—

(१) सिन्धुदेश, तिब्बतसे लेकर कराची तक सिन्धु नदीके किनारेके सम्पूर्ण देश। (२) हिन्दुकुश पर्वतमाला, (३) हिन्दुकुशके उत्तरीय पार्श्वसे उत्तरमें रहनेवाली रसा तथा श्वेत्या नामक दोनों नदियाँ तथा उनके चारों ओरके देश। (४) कुभा-काबुलदेशकी नदी, गोमती (गोमल) नदी तथा क्रुमु (कुर्रम) नदीके चारों ओरके सम्पूर्ण देश। (५) गङ्गा, यमुनाका द्वीप तथा साराका सारा पञ्जाब तथा सिन्ध प्रदेश, उक्त देशों-को वेद 'सिन्धु' शब्दसे लेता है। वेदमें तरीकेसे 'हिन्दुस्थान' का यह भूगोल वर्णित कर दिया है; तब इस देशकी जातिका नाम भी 'सिन्धु' यही स्वाभाविक है।

२४-'सिन्धौ अधिक्षियतः ऋ० १।१२६।१) इस मन्त्रमें भी 'सिन्धौ-सिन्धुदेशे अधिक्षियतः-निवसतः' (क्षि-निवासगत्योः) इस प्रकार 'सिन्धु' देश बतलाया गया है। श्रीपाणिनिने भी वेदाङ्ग व्याकरणमें (अष्टाध्यायी ४।३।८३) 'सिन्धु' देश माना है। तब सदासे 'सिन्धु' देशमें रहनेवाली जातिका नाम भी 'सिन्धु' हो सकता है; क्योंकि उस-उस देशकी जाति का नाम भी उस-उस देशके नामसे ही हुआ करता है, जैसेकि—जर्मन, इङ्गलिश, फ्रेञ्च, अरब, पौण्ड्रक, द्रविड, चीन आदि जातियाँ देशके नामसे ही प्रसिद्ध हैं। ठीक भी यही होता है। देशके नामसे जातिका

नाम रहनेसे उस जातिके हृदयमें अपने उस देशका प्रेम और उसका अभिमान रहता है। उस देशके नाम वाली जाति उस देशकी रक्षाके लिये सदा अपने प्राणोंकी आहुति देनेको सन्नद्ध रहती है। देशसे भिन्न जातिका नाम रखनेसे उस जातिका देश पर मोह या प्रेम नहीं रह सकता।

जब ऐसा है, हमारे देशका वैदिक नाम 'सिन्धु' है, 'सिन्धु' का ही दूसरा देशी रूप 'हिन्दु' है, उसकी जातिका नाम भी 'हिन्दु' है; तब "हिन्दुस्थान हिन्दुओंका, हिन्दु हिन्दुस्थानके" यह नारा सिद्ध हो गया। जबसे अंग्रेजीभावापन्न लोगोंने इस देशके 'हिन्दुस्थान' नामका विरोध किया; वा विदेशोंको वे हमारा आदि-देश मानने लगे; तबसे मुसलमान भी तथा अंग्रेज भी इसे केवल हिन्दुओंका स्थान न मानकर अपना आधिपत्य भी इस पर मानने लगे। हमें भी अपनी तरह हिन्दुस्थानमें विदेशी सिद्ध करने लगे।

इसी 'हिन्दु' तथा 'हिन्दुस्थान' नामसे घृणा कराने वाले विदेशी-भावापन्न जनोंने ही 'पाकिस्तान' को जन्म दिलाया। जो इस देशका नाम 'हिन्दुस्थान' नहीं मानते, और अपने आपको 'हिन्दु' नहीं मानते, उन्हें यहां रहनेका कोई अधिकार नहीं, उन्हें विदेशोंमें चला जाना चाहिये।

२५ 'हिंदु' शब्दकी वैदिकताका निरूपण हो चुका। यह वैदिक होता हुआ भी वैदिककालमें हिंदुजातिसे अतिरिक्त और कोई भिन्न जाति न होनेसे बहुत प्रचलित नहीं हुआ; क्योंकि दूसरी जातिसे भिन्नतार्थ ही यह नाम प्रचलित होता है। अतः पीछेकी जातियोंने तो हमारे इस नामको अपनी भेदकतार्थ अपने साहित्यमें अपनाया; पर हमारे अपने साहित्यमें यह कम ही रहा। उस समय अपनी भेदकताके लिए चार वर्णों तथा अवर्णोंकी जातियोंका नाम ही प्रसिद्ध रहा। तथापि 'हिंदु' नामका सङ्केत संस्कृत साहित्यमें क्वचित्-क्वचित् पाया भी जाता है।

'भविष्यपुराण' के प्रतिसर्ग पर्वके प्रथमखण्डके 'जानुस्थाने जैउ शब्दः, 'सप्तसिन्धुस्तथैव च। सप्तहिन्दुर्यावनी च' (५।३६) में 'हिन्दु' शब्द प्रत्यक्ष है। आर्यसमाजी श्रीमनसारामने भी 'भविष्यपुराणकी समालोचना' की भूमिकामें इस प्रमाणको उद्धृत किया है। यह बात और है कि—वे इस वचनको प्रक्षिप्त मानते हैं। अपनेसे विरुद्ध वचनोंको ये लोग जहां-तहां अपने मानकी रक्षार्थ प्रक्षिप्त मानते हैं, पुराणोंमें तो कहना ही क्या? यह तो उनकी प्रकृति ही है। २ 'हिंदवो विन्ध्यमाविशन्' इस कालिका पुराणके वचनमें भी 'हिन्दु' शब्दकी सुनवाई है। ३ इसी प्रकार 'हिन्दुधर्म प्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनः। हीनं च दूषयत्येव स हिंदु रुच्यते प्रिये! (२३ प्रकाश) 'मेरुतन्त्र' के इस स्थलमें भी 'हिन्दु' शब्द मिलता है। हीन- अर्थात् हिन्दुधर्मादिहीन- निकृष्टको दूषित (दुःखित) करनेवाला 'हिन्दु' होता है। तब इसका 'दुर्बल-पीडक' अर्थ करते हुए श्रीवेदानन्दतीर्थ निरस्त होगये। जो कहते हैं कि- मेरुतन्त्रमें 'खान, मीर' आदि शब्द उपलब्ध हैं, अतः उक्त ग्रन्थ आधुनिक है; जैसे कि 'पश्चिमाम्नायमन्त्रास्तु प्रोक्ताश्चारव्व भाषया। पञ्च खानाः सप्त मीरा नव साहा महाबलाः। हिन्दुधर्मप्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनः। फिरङ्ग-भाषया मन्त्रास्तेषां संसाधनात् कलौ। इङ्गरेजा नवपट् पञ्च लण्डजाश्चापि भाविनः' इत्यादि, पर यह ठीक नहीं, क्योंकि यहां पर 'भाविनः' शब्दसे उनका भविष्यत् में होना ही बतलाया है, वर्तमान होना नहीं। पुराणोंमें तो कलियुगके अन्तमें होनेवाले कल्की अवतारका भी वर्णन है; तो क्या वादी पुराणोंको भी कलिके अन्तमें बना हुआ मानेंगे? ऐसा नहीं। इसी भांति 'भूयो दश गुरुण्डास्तु' (१२।१।२८) श्रीमद्भागवतके इस पद्यमें भी तुरुष्क, गुरुण्ड, यवन आदि राजाओंका भावी वृत्तान्त वर्णित किया गया है। भावी होनेसे वर्तमानताका खण्डन होरहा है।

४ 'हिंदवो विन्ध्यमाविशन्' यह शार्ङ्गधरपद्धतिमें पद्य है। २ 'हिंर्नास्ति तपसा पापान् दैहिकान् दुष्टमानसान्। हेतिभिः शत्रुवर्गं च

स हिन्दुरभिधीयते' यह 'पारिजातहरण' नाटकमें है। इसमें 'हिन्दुपति' शब्द कई बार आया है। ६ हिन्दुर्हिन्दूश्च प्रसिद्धौ दुष्टानां च विधर्षणे। रूपशालिनि दैत्यारौ इत्यादि अद्भुत कोपमें आया है। ७ 'हीनं दूषयति' इति 'हिन्दुः' पृषोदरादित्वात् साधुः जातिविशेषः' यह शब्द-कल्पद्रुम कोपमें आया है। ८ इसी प्रकार 'वाचस्पत्य' कोप आदि में भी।

वैदिक साहित्यमें हमारे देशका नाम

२६ वेदमें हमारे देशका नाम 'भारतवर्ष' या 'आर्यावर्त' नहीं मिलता, किन्तु 'सिन्धु' मिलता है यह हम आरम्भमें कह चुके हैं। वेदमें भारतवाचक 'सिन्धु' से व्यतिरिक्त कोई भी शब्द नहीं है। तो क्या यह माना जाय कि वेदमें हमारे देशका नाम ही नहीं है? ऐसी बात नहीं। जो वेद हमारे भारतवर्षकी धर्मपुस्तक हैं, सर्वज्ञ परमात्माकी रचना है, जिनमें भारतीय नदियों-पर्वतोंके नाम मिलते हैं, उनमें यह सम्भव नहीं कि हमारे देशका नाम सर्वथा न हो। भूगोल या इतिहास में देश आदिके नाम हों और हमारी धर्मपुस्तकमें प्रसक्तानुप्रसक्त भी हमारे देशका नाम न हो, यह नहीं हो सकता। स्वामी दयानन्दजी के 'सत्यार्थप्रकाश' में तथा मनु आदि की स्मृतियों में हमारे देशका नाम 'आर्यावर्त' मिलता है, इससे उक्त पुस्तकें भूगोल या इतिहास नहीं बन जावीं। अतः स्वामी वेदानन्दतीर्थका 'हमारा नाम आर्य है हिन्दू नहीं' इस अपनी पुस्तकके १४वें पृष्ठमें 'वेद इतिहास या भूगोलकी पोथी नहीं, जो उसमें 'आर्यावर्त' या 'भारतवर्ष' नाम मिलता' यह कहना उचित नहीं है।

वेदमें हमारे देशका नाम है और वह है 'सिन्धु'। कई लोग 'भारतीळे' (ऋ० १।१८८।८) इस मन्त्रांशसे 'भारतस्य इयम् इति भारती। भारती चासौ इळा (पृथिवी) च तत्सम्बुद्धौ—हे भारतीळे' इस प्रकार

वेदमें भारतभूमिका नाम सिद्ध करते हैं। किन्तु यह ठीक नहीं है। यहां 'भारति !' और 'इले' ये पद भिन्न-भिन्न हैं, दोनों ही सम्बोधनांत हैं और भिन्न-भिन्न देवियोंके सम्बोधन हैं, इसमें 'भारति ! इले ! सरस्वति ! या वः सर्वा उपब्रुवे' (ऋ० १।१८८।८) यह बहुवचन बोधक है। स्वर भी सम्बोधन का है। यहाँ 'इला' भी नहीं है कि पृथिवीका नाम हो जाय, किन्तु 'इडा' शब्द है, 'ड' को वैदिक 'ल' हुआ है, इसलिए यह पृथिवी-वाचक भी नहीं है। इधर वेदमें 'भारत' शब्द भी अग्निके लिए प्रयुक्त किया जाता है; क्योंकि वह दूसरे देवोंका हव्य-भरण (धारण) करता है। यह बात 'शतपथब्राह्मण' (१।४।४।२) में स्पष्ट है। तब 'सिन्धु' देशका 'भारत' यह नाम भी अर्वाचीन है। 'सिन्धु' जाति यह नाम उस सिन्धु देशकी जातिका पूर्वकालसे चल रहा है, 'भारत' यह हमारी जातिका नाम प्रसिद्ध नहीं। भारतकी रहनेवाली बाह्य जातियोंको भी 'भारतीय' शब्द से कहा जाता है, 'सिन्धु' 'हिन्दु' शब्दसे नहीं, इसलिए उक्त मन्त्रमें हमारे देशका नाम 'भारती इला' आया है, यह किन्हींकी कल्पना असङ्गत ही है।

इससे स्पष्ट है कि वेदमें भारतवर्षका नाम 'सिन्धु' ही है। इसलिए आर्यसमाजिक विचारवाले भी पं० सत्यव्रत सामश्रमीजीने अपने बनाये 'ऐतरेयालोचन' (२० पृष्ठ) में भी कहा है—'तत्वतस्तु एतत्-त्रिसप्तनदी-परिवृतः 'सिन्धु' मध्य एवासीत् पूर्वकालिक आर्यावर्त इति'। उन्हीं सामश्रमीजीने वेदमें 'आर्यावर्त या भारत' नामके न होनेके विषय में कहा है—'अथैतद् आर्यावर्ताभिधानं न क्वचिदपि संहितायां, ब्राह्मणे वा श्रुतमस्ति' (ऐत० पृ० २०)।

हिन्दु कौन ?

२७ इससे 'सिन्धु' देशमें स्थित मुसलमान, अङ्गरेज, अमेरिकन 'हिन्दु' शब्दसे सम्बोधित नहीं किये जा सकते, क्योंकि यद्यपि वे इस-

देशमें तो हैं, परन्तु इस देशकी जाति वाले नहीं। जाति तो उस देशमें आदिजन्मवालोंके वंशमें उत्पत्ति होने पर तथा उन्हींके साथ समान-रक्त-सम्बन्धादि होने पर होती है, यह नहीं भूलना चाहिए। वैसी उत्पत्ति वर्णाश्रमियोंकी तथा श्रुति-स्मृति-पुराणप्रोक्त धर्मका अनुसरण करनेवालों की होती है। इसलिए मुख्य हिन्दु या हिन्दु जातिवाले भी वही हैं। वर्णसङ्कर निन्दित तो अवश्य हैं, तथापि उनका भी इन्हींमें अन्तर्भाव है। अतएव वे भी 'हिन्दु' कहे जा सकते हैं। कई सुधारक लोग 'हिन्दु' शब्दको इसीलिए ग्रहण करना नहीं चाहते कि कदाचित् वे भी वर्णाश्रमी सनातनधर्मियोंमें न गिन लिये जांय। वास्तवमें हमारे पूर्वजोंने जन्ममूलक वर्णाश्रम व्यवस्थासे हमारे हिन्दुराष्ट्रको आजतक सुरक्षित रखा, जिसे आजकलके अर्वाचीन सुधारकभास पारसी, मुसलमान, अङ्गरेज, अन्त्यज आदिके साथ रक्त-सम्बन्ध करके दूषित करना चाहते हैं। वस्तुतः वे ऐसा करके अन्य जातियोंको सबल तथा हमारी जातिको निर्बल करना चाहते हैं। इस विषयमें हिटलरकी 'मेरा सङ्घर्ष' नामक पुस्तकमें रक्त-सम्बन्धविषयक उसके विचार पढ़नेयोग्य हैं। अस्तु।

आर्य शब्द पर विचार

२८ जो लोग हमारी जातिकी संज्ञा 'आर्य' मानते हैं, उन्हें यह जानना चाहिए कि यह 'आर्य' शब्द 'गुणशब्द' है, 'जातिशब्द' नहीं। वादिगण वेदमें रूढ तथा योगरूढ़ शब्द नहीं मानते। तब वेदमें 'आर्य' शब्दका रूढ-योगरूढ अर्थ भी नहीं ले सकते। तब यह शब्द 'सिन्धु' जातिमें जो श्रेष्ठ थे, उन्हींके लिए प्रयुक्त हुआ, सर्वसाधारणके लिए नहीं। स्वामी दयानन्दजीने भी यह स्वीकृत किया है। देखिये—'आर्य' नाम उत्तम पुरुषोंका और आर्योंसे भिन्न मनुष्योंका नाम 'दस्यु' है ('सत्यार्थ एकादशसमुल्लासारम्भ' पृ० १७२। 'आर्य नाम धार्मिक विद्वान्, आप्त पुरुषों और इनसे विपरीत जनोंका नाम 'दस्युः' अर्थात्

डाकू, दुष्ट अधार्मिक और अविद्वान् है" (सत्यार्थप्रकाश ८ समु० १४० पृष्ठ), "आदिसृष्टिमें एक मनुष्यजाति थी पश्चात् ...श्रेष्ठोंका नाम आर्य और दुष्टोंके दस्यु दो नाम हुए" (स० प्र० पृ० १२६), "आर्य श्रेष्ठ और दस्यु दुष्ट मनुष्यको कहते हैं" (स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश २६ संख्या)। इस प्रकार स्वामी दयानन्दजीने भी 'आर्य' शब्दको गुणवाचक दिखलाया है।

जो साधारण गवेषक लोग नाटकोंमें 'आर्यपुत्र' आदि शब्द देखकर तथा 'भगवद्गीता' में 'अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यम्' (२।२) एवं 'महाभारत' में 'यस्योदकं मधुपर्कं च गां च न मन्त्रवित् प्रतिगृह्णाति गेहे। ...तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः" (उद्योगपर्व ३८।३) एतदादि स्थलोंमें 'आर्य' शब्द देखकर आनन्दके आंसू बहाते हुए अपनी गवेषणाकी चरम सीमा मानते हैं, वे दयनीय हैं। वहां 'आर्य' शब्द श्रेष्ठतावाचक है, जातिवाचक नहीं। "यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः" (१।२३) इस 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटकके श्लोकमें मन को भी 'आर्य'—श्रेष्ठ—बतलाया गया है, मन की आर्यजाति कैसे हो सकती है? पत्नी पतिको 'आर्यपुत्र' कहती है। 'आर्य' को हिन्दुजातिस्थानापन्न माननेपर 'हे हिन्दुपुत्र' इस सम्बोधनसे क्या लाभ है? जहाँ अन्य स्थलोंमें भी 'आर्य' यह सम्बोधन दिया गया है, वहाँ भी 'हिन्दुजाति' यह अर्थ इष्ट नहीं होता, नहीं तो ऐसा सम्बोधन असाभिप्राय होनेसे व्यर्थ हो जाय। वैसा सम्बोधन तो हमें भिन्न धर्मवाला या भिन्न जातिवाला देता है, समान धर्मवाला तथा समान जातिवाला वैसा सम्बोधन नहीं देता, क्योंकि इसमें कोई व्यभिचार (दोष) नहीं आता, जिससे वैसा विशेषण देना सार्थक हो जाय। इसीलिए तो हमारे साहित्यमें 'हिन्दु' शब्द कम मिलता है, क्योंकि हमारे ही व्यक्ति हमें वैसा सम्बोधन कैसे दें? अन्य विधर्मियोंके साहित्यमें इसीलिए 'हिन्दु शब्द अधिक मिलता है, क्योंकि यह स्वाभाविक है।

यदि हमारे संस्कृतसाहित्यमें 'हिन्दु' शब्दके अल्पतम प्रयोगसे इसे वैदेशिक माना जाय, तो सिख, गुजरात, सिया आदि शब्द भी संस्कृत-साहित्यमें नहीं मिलते, इनके शुद्ध शब्द शिष्य, गुर्जर, सीता आदि संस्कृतसाहित्यमें सुलभ हैं, तब क्या सिख आदि शब्दोंको इससे वैदेशिक मान लिया जाया करेगा ? इस प्रकार 'हिन्दु' शब्दका मूलभूत 'सिन्धु' शब्द भी वैदिक संस्कृतमें सुलभ है। हमारे साहित्यमें हिन्दु शब्दकी अल्पमात्रामें प्राप्तिका एक कारण भी है। वह यह है कि पहले एक समष्टिनामसे उच्चारणकी शैली प्रायः नहीं थी। पहले तो चतुर्वर्ण तथा अवर्ण जातियोंके नामसे पृथक्-पृथक् आह्वानकी शैली थी।

इस प्रकार 'अमरकोष' आदिमें यदि 'हिन्दु' शब्द नहीं मिलता, तो वहां 'आर्य' शब्द भी हमारी जातिका वाचक नहीं मिलता, किन्तु श्रेष्ठमात्र का। तब इस प्रकारके गवेषक अधिक परिश्रम करें। यदि वे इस विषयमें पुराणोंके प्रमाण दें, तो उन्हें पुराण भी प्रमाण मानने पड़ेंगे, तब तो उसमें स्थित 'हिन्दु' शब्द भी प्रमाण मानना पड़ेगा। वस्तुतः उनमें भी 'आर्य' पद श्रेष्ठतावाचक है, जातिशब्द नहीं।

वेदमें जहाँ 'आर्य' शब्द आता है, वहाँ सायण आदि प्राचीन भाष्यकारोंने उस शब्से श्रेष्ठ होनेसे 'ब्राह्मण' ही गृहीत किया है। 'प्रधानेन हि व्यपदेशा भवन्ति' इस न्यायसे उसके उपलक्षणसे क्षत्रिय गृहीत किये गये हैं। इसीलिए "अर्यः स्वामिवैश्ययोः" (३।१।१०३) इस सूत्रके प्रत्युदाहरणमें 'काशिका-कौमुदी' आदिमें 'आर्यो ब्राह्मणः' यह दीखता है। 'लाट्यायन श्रौतसूत्र' से "अर्याऽभावे यः कश्च आर्यो वर्णः" (४।३।६) इस सूत्रका अग्निस्वामीका भाष्य इस प्रकार है— "यदि वैश्यो न लभ्यते; यः कश्च आर्यो वर्णः स्याद्, ब्राह्मणो वा क्षत्रियो वा"। इसी प्रकार वेदमें भी है..."अहं भूमिमददामार्याय"

(ऋ० ४।२६।२), "हत्वी दस्यून् आर्यं वर्ण मावत्" (ऋ० ३।३४।९) इत्यादि स्थलों में भी जानना चाहिए।

अर्यन शब्द

२६ जो लोग अंग्रेज आदिसे हमारे लिए 'अर्यन्' यह नाम प्रयुक्त देखकर प्रसन्न हो जाते हैं, उन्हें जानना चाहिए कि वे हमें आर्यावर्तमें रहने वाला होनेसे 'अर्यन' नहीं कहते, किन्तु 'ईरान' प्रदेशसे आया हुआ मानकर वे हमें 'अर्यन' कहते हैं। अतएव उनसे प्रयुक्त 'अर्यन' शब्द अन्य ही है। इससे 'आर्य' नामके प्रेमियोंको प्रसन्न नहीं होना चाहिये। 'आर्यावर्त' में रहने वाले होनेसे तो वे हमें 'इण्डियन' कहते हैं, 'अर्यन' नहीं। उस 'इण्डियन' का मूल शब्द 'सिन्धु' वा 'इन्दु' ही है, यह पहले कहा जा चुका है। 'अर्यन' कहकर वे हमें ईरानसे आया हुआ इसलिए सिद्ध करते हैं कि ये लोग भी भारतवर्षको स्वदेश न मानें, किन्तु अपने आपको प्रवासी मानें। जैसे अरबसे मुसलमान भारतमें आकर रहते हैं, जैसे अंग्रेज इङ्गलैण्डसे यहां आकर रहते हैं, उनका भारतवर्ष अपना देश नहीं, किन्तु विदेश है, वैसे यह आर्य भी ईरान से ही यहाँ आये हैं। इसलिए भारतवर्ष भी इनका अपना देश नहीं किन्तु परदेश ही है। वहाँ उनकी यही गुप्त नीति है कि जैसे प्रवासी मुसलमान इस देशको अपना देश न मानकर उसके खण्ड कराना चाहते हैं या करा चुके हैं, उनका इस देशसे प्रेम नहीं, वैसे ये 'अर्यन्' नामधारी भी ईरानके रहने वाले होनेसे उसीको अपना देश मानें, उससे ही स्नेह करें, भारतवर्षकी रक्षाके लिए ये लोग अपना रक्त न बहायें।

वास्तवमें वेदशास्त्रके देखनेसे हमारी जन्मभूमि या स्वदेश सिन्धु (भारतवर्ष) ही सिद्ध होता है। इन अंग्रेज आदिके अनुमान तो कपोल-कल्पनामात्रविश्रान्त होनेसे प्रायः निराधार हैं। इस प्रकार जो लोग हमें

मध्यएशियासे या 'उत्तरमेरु' से आया हुआ मानते हैं, यह सब भ्रममात्र है। वेद सृष्टिके आदि समयसे बनाये हुए माने जाते हैं। मैक्समूलर आदि पश्चिमी विद्वान् भी 'ऋग्वेद' को पृथिवीका सर्वप्रथम ग्रन्थ मानते हैं। परन्तु उन वेदोंका आविर्भाव भारतसे अन्य देशमें कोई ठीक-ठीक सिद्ध नहीं कर सका है। यदि ऐसा है,तब 'ऋग्वेद'से अन्यत्र जानेकी आवश्यकता नहीं कि हमारा देश कौनसा है। प्रत्येक प्राचीन जातिका 'परिचयचिह्न' होती है उसकी 'भाषा'। परन्तु जो हमें बाहरसे आया हुआ मानते हैं, वे क्या यहाँकी तथा हमारी भाषाको समान सिद्ध कर सकते हैं? संसार की जिस उन्नत जातिने उच्च सोपानपर आरोहण किया, चाहे वे जातियाँ भिन्न-भिन्न दिग्दिगन्तोंमें फैल भी जायें, तथापि उनका आदिनिवास-स्थान नियत ही हुआ करता है। जो जातियां अपनी संख्यावृद्धिसे भिन्न-भिन्न देशोंमें अपने उपनिवेश बनाया करती हैं अथवा उस-उस देशमें प्रतिष्ठित हो जाती हैं, उन जातियोंके अपने देशमें अपने चिह्न तथा भाषा नियत होती है। अंग्रेजोंको ही देख लीजिये। वे बहुत फैले, ईसाकी १६ वीं शताब्दी से वे भिन्न-भिन्न प्रांतों में फैलते दिखलायी पड़ते हैं। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, एशिया आदिमें सर्वत्र वे रहते हैं, परन्तु क्या उन्होंने स्वदेशको सर्वथा भुला दिया? क्या अपने देशमें अपनी भाषा या अपने चिह्न प्रतिष्ठित नहीं किये? प्रत्युत उन्होंने तो इससे अपने देशकी ही प्रतिष्ठा बढायी है। इस प्रकार अन्य जातियों पर भी दृष्टि डालिये।

सभी जातियोंने विदेशोंमें उन्नति करके अपने देशके ही मुखको उज्ज्वल किया है। सभी जातियोंने अपने देशकी श्रीवृद्धिमें तथा उसके संरक्षण एवं उस देशकी भाषाके प्रचारमें ही सदा अपना गौरव समझा है। तब सबसे मस्त हिन्दुजाति ही इस मोटी भूलको क्योंकर कर सकती है कि अपने आदिदेशको भुलाकर यहां आगयी और अपने आदिदेशमें कोई भी अपना चिह्न स्थापित नहीं किया? क्या 'मध्य एशिया' आदि

हिन्दुजातिके तथाकथित देशोंमें संस्कृतभाषा दिखलायी देती है? क्या वहाँ ब्राह्मण आदि चार वर्ण या अन्य वेदादिके प्रचार-चिह्न पाये जाते हैं?

वस्तुतः यह भारतवर्ष ही हमारा आदिदेश है। इसीलिए आदि-सृष्ट्युत्पन्न मनु ने लिखा है--'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः' (२।२०)। इस प्रकार भारतवर्ष ही हमारी आदि जन्मभूमि है। भारतसे ही अन्य दिशा-विदिशाओंमें गये हुए हमारे बन्धुओंने वहाँ-वहाँ अपने उपनिवेश बनाये जिनके चिह्न कभी-कभी भूगर्भ खोदने पर मिलते हैं। यहाँ के अग्रजन्मा ब्राह्मण ही जगद्गुरु होकर फैले।

वेदादिमें छहों ऋतुओंका वर्णन मिलता है, भारतसे भिन्न अन्य किसी भी देशमें छहों ऋतु नहीं मिलते, इससे भारतवर्ष ही हमारी जन्मभूमि सिद्ध होती है। 'धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे' (विष्णुपुराण २।३।२४) यह कहकर देवगण भी हमारी जन्मभूमि भारतवर्षमें ही आने के लिए लालायित रहते थे। यहाँ के ही अर्जुनने दिग्विजय करके भारतका नाम विदेशोंमें प्रसिद्ध कर दिया था, इसी तरह अन्य क्षत्रियोंने भी। फलतः हमारा आदि निवासस्थान सिन्धुदेश ही है, जो कालान्तर में भारतवर्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ। यहीं के स्वायम्भुव मनुके पुत्र सम्राट् प्रियव्रतने पृथिवीको सात द्वीपोंमें बाँटा और अपने राज्यको जहाँ-तहाँ फैलाया। इससे ही हमारे पूर्वज दूर-दूर देशोंके वृत्त जानते थे। इसीलिए ही जहाँ-तहाँ उन-उन देशोंका वर्णन दिखलायी पड़ता है, वहाँ पर आदिनिवासके कारण नहीं।

अंग्रेजोंके भूगोलमें यदि कहीं 'कासकाट' नामक क्षुद्र ग्रामकी पुरानी कहानी लिखी हो, तो इससे अंग्रेज उस गांवके रहनेवाले कदापि सिद्ध नहीं हो सकते। वेदादिमें जो शीतका वर्णन वा दीर्घ उषाका वर्णन दिखलायी देता है, वह हमारी अभिज्ञानतावश मिलता है, हमारे यहाँ

आदिनिवासके कारण नहीं। हमारे वेदादिशास्त्रोंमें तो आकाश, स्वर्गादि लोकों का वर्णन भी मिलता है, तो क्या हमारा मूलनिवास वहाँ कोई मान सकता है? वेद सर्वान्तर्यामी की कृति है, उसमें घुणाक्षरन्याय से यदि कहीं भारतसे दूरके देशोंका वर्णन या उनकी प्रकृति का वर्णन दिखलायी पड़े, तो इसका कारण सर्वज्ञता है, इससे हमारा उसमें आदिनिवास कभी सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए इस विषयमें पाश्चात्यों या तदनुयायी पौरस्त्यों के व्यभिचारी अनुमानों का मूल्य कपोल-कल्पनासे बढ़कर नहीं है।

आर्य और शूद्र

३० इससे स्पष्ट हुआ कि अँग्रेजों द्वारा हमें 'अर्यन' कहे जानेका क्या रहस्य है। यह 'अर्यन' 'आर्य' का अपभ्रंश नहीं है, अथवा यदि हो भी, तो वहाँ 'आर्य' से भी उन्हें 'ईरानसे आये हुए' यह अर्थ अभीष्ट है. 'सर्वश्रेष्ठ' अर्थ नहीं। अथवा वाद्तितोषन्यायसे मान भी लिया जाय कि 'आर्य' हमारी जातिका नाम है, पर ऐसा होने पर वह व्यापक सिद्ध नहीं होता, क्योंकि 'उत शूद्रे उत आर्ये' (अथर्व १६।६२।१), 'उत शूद्रं उत आर्यम्' (अथर्व० ४।२०।८), 'शूद्राय च आर्याय च' (अथर्व० १६।३२।८), 'यो नो दास आर्यो वा' ऋ० १०।३८।३), 'यश्च शूद्र उत आर्यः' (अथर्व० ४।२०।४), 'आर्याय वा पर्यवदध्यात्, अन्तर्धिने वा शूद्राय' (आपस्तम्बधर्मसूत्र ११३।४०—४१), 'आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः (स्थानशुद्धिकर्तारः अन्नसंशोधका वा) स्युः' (आपस्तम्ब धर्म० २।२।२।४) इत्यादि वेदादिके प्रमाणोंमें आर्य एवं शूद्र के पृथक् पृथक् ग्रहणसे सिद्ध होता है कि शूद्र आर्य नहीं हैं।

स्वामी दयानन्दजीने भी यह स्वीकृत किया है, देखिये—'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजोंका नाम आर्य और शूद्रका नाम अनार्य है' (सत्यार्थ-

अ० ८ समु०, १४० पृ०), 'द्विज विद्वानोंका नाम आर्य और मूर्खोंका नाम शूद्र और अनार्य नाम हुआ।' (स० प्र० पृ० १२६) यदि उन्होंने कहीं शूद्र को 'आर्य' लिखा भी है तो वहाँ शास्त्र-विरोध है। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर आर्यसमाजी विद्वान्‌ने भी 'छूत और अछूत' पुस्तक के पूर्वार्ध (२१ पृ०) में लिखा है—'उत शूद्रे उत आर्ये' (अथर्व० ४।२०) के सदृश प्रयोग वेदमें कई स्थानोंमें नजर आते हैं, इससे स्पष्ट होता है कि आर्य त्रैवर्णिक लोग हैं और अनार्य शूद्र हैं'। इस विषयमें अथर्ववेदभाष्यमें श्रीराजाराम शास्त्री, 'अस्पृश्यनिर्णय' में आर्यस्वराज्य-सभाके मन्त्री श्रीरामगोपाल वैद्यभूषण, चतुर्वेदभाष्यकार श्रीजयदेवजी और श्रीनरदेव शास्त्री, श्रीदेवशर्मा, श्रीक्षेमकरण आदि आर्यसमाजी विद्वान् भी सहमत हैं। आर्यसमाजके प्रसिद्ध स्वामी विश्वेश्वरानन्द नित्यानन्दजीने भी अपनी वेदपद-सूचीमें उक्त मन्त्रमें 'आर्य' यही पद स्वीकृत किया है। इससे 'अर्य' का छेद करनेवाले श्रीशिव-शङ्कर काव्यतीर्थजी का मत छिन्न होगया।

आर्य शब्द

२१ जब शूद्र ही 'आर्य' नहीं रहा, तब चाण्डाल आदि अवर्णोंकी तो 'आर्य' संज्ञा हो ही कैसे सकती है? उचित तो यह है कि भारतवर्षीय जातियोंका समान नाम हो। 'तमिमेव तु आर्याः प्रयुञ्जते' महाभाष्यादि में दिया यह आर्य शब्द ब्राह्मणवाचक है, 'प्रधानेन हि व्यपदेशा भवन्ति' इस न्यायसे द्विजोंका उपलक्षक है, जैसे कि 'ब्राह्मणेन निष्का-रणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' यहाँ ब्राह्मण शब्द प्रधान होने से उपलक्षण है, अन्यथा क्षत्रिय-वैश्योंके लिए वेदाध्ययन निषिद्ध हो जाय। भाष्यकारकी यह शैली है कि वे प्रायः ब्राह्मणोंके ही उदाहरण दिया करते हैं। इस विषयमें महाभाष्यका पारायण करना चाहिए। तब 'महाभाष्य' में भी 'आर्य' शब्द प्राप्तव्यार्थको अथवा लक्षणमें

श्रेष्ठत्वको मानकर ब्राह्मणवाचक ही सिद्ध हुआ जातिशब्द नहीं। इसी-लिए 'साहित्यदर्पण' के छठे परिच्छेद में 'नाट्योक्तियों' में 'स्वेच्छया नामभिर्विप्रैर्विप्र आर्येति चेतरैः' इस प्रकार ब्राह्मणको 'आर्य' सम्बोधन देना कहा है। इस प्रकार ब्राह्मणको 'आर्य' सम्बोधन देना कहा है। इस प्रकार 'मृत्युर्विप्रान् जिघांसति' (मनु० ५।४) इत्यादिमें भी 'विप्र', नाम 'प्रधानेन हि व्यपदेशा भवन्ति' इस न्यायसे आया है।

'एतान् द्विजातयो देशान् (ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पाञ्चाल, शूरसेन, मध्यदेश, आर्यावर्तदेशान्) संश्रयेरन् प्रयत्नतः। शूद्रस्तु यस्मिन् कस्मिन् वा (म्लेच्छदेशेपि) निवसेद् वृत्तिकर्शितः' (मनु० २।२४) इस प्रकार द्विजात्युत्पन्नोंका ही भारतवर्षमें प्रधानतासे निवास बतलाया है, शूद्रोंका तो गौणतासे। इसलिए २।४।१० सूत्रके 'महाभाष्य' में 'आर्यावर्ताद् अनिरवसितानाम्' इस प्रघट्टकसे सब तरहके शूद्रोंका आर्या-वर्तमें निवासका अधिकार नहीं माना है। तब 'आर्यावर्त' यह नाम आर्यों—ब्राह्मणोंके प्रधानतया निवासके कारण ही कहा है—'प्रधानेन हि व्यपदेशा भवन्ति'। जैसा कि जिस ग्राममें मुसलमान अधिक रहा करते हैं, वहाँ थोड़े हिन्दुओंके होते हुए भी वह ग्राम मुसलमानोंका ही कहा जाता है। काबुल-कान्धारमें थोड़े हिन्दुओंके होते हुए भी वह देश 'अफगानिस्तान' कहा जाता है। आजकल भारतवर्षमें थोड़े मुसलमानोंके होने पर भी उसे 'हिन्दुस्तान' ही तो कहा जाता है। प्रधानताके कारण किसीके नामसे देशका नाम होने पर भी अन्य अप्रधान प्रजाका अभाव सिद्ध नहीं हो जाता। इसके अनुसार तब ब्राह्मणोंकी प्रधानतासे हमारे देशविशेषका 'आर्यावर्त' यह नाम 'प्रधानेन हि व्यपदेशा भवन्ति' इस न्यायसे प्रसिद्ध है। वह आज भी वैसे ही रूढ है। इससे यह सिद्ध हो गया कि समस्त भारतीयोंका 'आर्य' यह नाम नहीं है। तब शूद्र अनार्य सिद्ध हुए, इसी प्रकार अवर्ण तथा

वर्णसङ्कर भी। इस प्रकार 'महाभाष्य' के वचनमें 'आर्य' शब्द ब्राह्मण-वाचक सिद्ध हुआ। यदि आर्यावर्तमें निवासके ही कारण शूद्र और अवर्णोंका नाम 'आर्य' हो जाय, तो यहाँके मुसलमान तथा ईसाई भी 'आर्य' हो जायंगे, गर्दभ आदि पशु भी तथा काक आदि पक्षी भी आर्य हो जायंगे, परन्तु ऐसी बात नहीं है। इससे आर्यावर्तमें निवासमात्रसे ही आर्यता नहीं हो जाती।

स्वामी दयानन्दजी का मत

२२ जो कि स्वामी दयानन्दजी ने लिखा है—'आर्यावर्त देश इस भूमिका नाम इसलिए है कि इसमें आदिसृष्टि से आर्यलोग निवास करते हैं और जो आर्यावर्तमें सदा रहते हैं, उनको भी आर्य कहते हैं' (स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ३० संख्या; यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि स्वामीजी ने आदिसृष्टिमें आर्यों का निवास 'तिब्बत' में माना है, देखिए 'सत्यार्थ प्रकाश' अष्टम समुल्लास १३९ पृष्ट। इससे आर्यावर्तमें उनका निवास सिद्ध न हुआ। परस्पर विरुद्ध होने से ही उनका यह वचन ठीक नहीं है। जो कि स्वामीजी ने कहा है कि 'आदिसृष्टि तिब्बतमें हुई, उसमें आर्य-अनार्य दोनों का संग्राम हुआ। आर्यलोग तिब्बत छोड़कर यहां आ बसे। यही स्थान आर्यों का निवास होने से 'आर्यावर्त' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ. आर्यों के आने से पूर्व इस देशमें कोई नहीं रहता था' (स० प्र० १३९-१४०) यह बात निर्मूल ही है।

तिब्बतमें आदिसृष्टि का निर्माण किसी वेदादिशास्त्रमें नहीं लिखा, यह इसमें पहिली निर्मूलता है। त्रिविष्टपका अपभ्रंश भी तिब्बत नहीं। जहां 'त्रिविष्टप' शब्द आया है, वहां स्वर्गलोकवाचक आया है। जैसे—'विष्टप्-द्यौः, प्राविष्टा ज्योतिर्भिः (ग्रहनक्षत्रादिभिः), पुण्यकृद्भिर्वा' (२।१४।१२)। वेदाङ्ग पाणिनीय लिंगानुशासनमें 'त्रिविष्टप-

त्रिभुवने नपुंसके' (४४) यहां 'देवासुरात्म स्वर्ग' (लि० ४३) इस सूत्र से स्वर्गकी पर्यायतावश पुंलिंगता प्राप्त होने पर उक्त ४४ सूत्रमें बाध होगया। इससे विष्टप् या त्रिविष्टप-स्वर्गका नाम है, तिब्बतका नहीं! इसमें 'ऊर्ध्वं नाकस्याधिरोह विष्टपं स्वर्गोलोक इति यं वदन्ति' अथ० ११।१।७) यह मन्त्र भी ज्ञापक है। इसमें तिब्बतका नाम नहीं। न तिब्बतमें सृष्टि करने का यहां कोई वर्णन है। त्रिविष्टप केवल शीत-बहुल होनेसे अपूर्णता के कारण भी पूर्णतायुक्त सर्वादिम हिन्दु जातिका सृष्टि-प्रदेश नहीं हो सकता। अतः उक्त मन्त्रमें यजमानके स्वर्गलोकमें जाने का ही वर्णन है, तिब्बतमें नहीं। स्वर्गलोक इस लोकसे भिन्न होता है, जैसे—'दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः' (ऋ० १।१९१।३), त्रिविष्टपका अपभ्रंश तिब्बत है, यह भी निष्प्रमाण है।

इसी भांति उसीसे अग्रिम 'द्यौः स्त्रियाम्' (४५) इस लिंगानुशासन-के सूत्र-प्रोक्त 'दिव्' शब्दमें भी स्वर्ग अर्थ होनेसे ४३ सूत्रमें पुंलिंगता प्राप्त होने पर ४५ सूत्रसे बाध होगया। इसी तरह 'द्योदिवौ द्वे स्त्रियां, क्लीबं त्रिविष्टपम्' (अमरकोष १।१।६) में भी 'त्रिविष्टप' स्वर्गके नामोंमें आया है। अमरकोषके यह नाम स्वर्गवर्गमें हैं, भूमिवर्गमें नहीं, अतः पृथिवीलोकस्थ 'तिब्बत' का ग्रहण नहीं हो सकता। 'तृतीयं-विष्टपं (लोकः) त्रिविष्टपम्'? तब तीसरा लोक भू तथा अन्तरिक्षसे भिन्न स्वर्ग ही है। तिब्बत तो पहले भूलोकमें अन्तर्गत है। 'विष्टप' का अर्थ स्वा० द० जी की उणादिकोष (३।१४५) में भुवन माने गये हैं। 'त्रिविष्टप' का अर्थ उन्होंने स्वर्गके स्थान पर 'सुखविशेषोपभोगः' लिखा है। वे स्वर्गलोकको उड़ाना चाहते थे; अतः जहां 'स्वर्ग' वाचक शब्द आजावे; वहां 'सुख', 'दृष्टव्य सुख' यह अर्थ कर दिया करते थे।

जैसे वैदेशिक लोग हमारे भारतवर्षके प्रेमके विनाशके लिए हमें वैदेशिक सिद्ध करते हैं, वैसे ही स्वामीजीने भी तिब्बत-स्थित पुरुषोंको

'मूल हिन्दू' सिद्ध करके भारतवर्ष उनका विदेश सिद्ध कर दिया है। कदाचित् इसीलिए इस सम्प्रदायके व्यक्ति भारतीय धर्मसे ही विद्रोह करते हों। द्वितीय निर्मूलता इसमें यह है कि यदि आर्योंके निवाससे ही 'आर्यावर्त' यह नाम हुआ, तो तिब्बतमें भी आरम्भसे (स्वामिमतानुसार) आर्योंका निवास रहा, तो उसका नाम 'आर्यावर्त' क्यों नहीं हुआ? अथवा 'तिब्बत' में अनार्योंके निवाससे उसका नाम 'अनार्यावर्त' क्यों नहीं हुआ? अथवा यदि अनार्य भी वहां से यहां आये, तो इस देशका नाम 'आर्यानार्यावर्त' क्यों नहीं हुआ? अथवा यहां पर अनार्य-शूद्र चाण्डालादि भी आये या नहीं? (क्योंकि स्वामीजी शूद्रादि को अनार्य मान चुके हैं) यदि आये, तो 'आर्यानार्यावर्त' नाम क्यों न हुआ? इसलिए यह व्याजमात्र ही है।

वस्तुतः 'आर्यावर्त' यह रूढ ही नाम है, उसका लक्षण 'मनुस्मृति' २।२२ पद्यमें कहा है। रूढ न मानने पर इससे भिन्न कहे हुए 'ब्रह्मावर्त' आदि प्रदेश 'अनार्यावर्त' हो जाएंगे। इसी आपत्ति से अपने आपको बचानेके लिए स्वामीजीने 'ब्रह्मावर्त' के स्थानमें 'आर्यावर्त' शब्द ही पढ दिया है। भिन्न-भिन्न २२-१७ मनु श्लोकोंका अर्थ भी उन्होंने इकट्ठा कर डाला है, यह बात 'सत्यार्थप्रकाश' के अष्टम समुल्लास १४० पृष्ठ में द्रष्टव्य है। पर यह उनकी कृत्रिमता ही है, क्योंकि यह बात 'मनुस्मृति' से विरुद्ध है। 'मनुस्मृति' में ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त आदि भिन्न-भिन्न बतलाये हैं। 'कैवर्तमिति यं प्राहुरार्यावर्तनिवासिनः' मनु०(१०।३४। यह पद्य बता रहा है कि—आर्यावर्त सारे भारतका नाम नहीं; अन्यथा सारे भारतका नाम 'आर्यावर्त' होने पर उक्त शब्द व्यर्थ थे। अतः ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त आदि भारतके भाग ही थे। इसलिए 'स्मृतिचन्द्रिका' के संस्कारकाण्डमें 'देशनिर्णय-प्रकरण' में कहा है— 'अत्र तथा (ब्रह्मावर्त-कुरुक्षेत्र-मध्यदेशार्यावर्तेषु) पूर्वं पूर्वं उत्तरोत्तरात् प्रशस्तः। तथा च सुमन्तुः—'ब्रह्मावर्तः परो देशः ऋषिदेशस्त्वनन्तरः। मध्यदेशस्ततो

न्यून आर्यावर्तस्ततः परः' इति ।' इससे आर्यावर्त को मध्यदेश, ब्रह्मर्षि-देश तथा ब्रह्मावर्तसे न्यून बतलाया गया है। यहाँ प्रकरणवश 'परः' का अर्थ 'इतर' एवं 'हीन' है। 'ब्रह्मावर्त' को सर्वोत्तम बतलाया गया है। इससे यह भी स्पष्ट है कि 'आर्यावर्त' समस्त भारतका नाम नहीं है, किन्तु उसके एक भागका नाम है।

स्वामी दयानन्दजीके मतमें अन्य त्रुटि यह है कि यदि आदिसृष्टिमें केवल एक ही मनुष्यजाति थी, पीछे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार भेद हुए, तो वेदमें 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्' (शुक्लयजुः ३१, ११) इत्यादि में चार जातियोंका निर्देश कैसे है ? क्या वेद इन चार जातियोंके बनानेके बाद बना ? क्योंकि स्वामीजी इतिहासयुक्त उस ग्रंथ-को उस इतिहासके बाद बना मानते हैं। यदि भविष्यद्दृष्टिवश वेदमें वैसा वर्णन है, तो वेदमें भी भविष्यद् दृष्टिसे इतिहास सिद्ध होगया।

इससे स्पष्ट है कि 'आर्य' शब्द गुणशब्द ही है, जातिशब्द नहीं। तब वह हमारी जातिका 'आर्या जातिः' इस प्रकार विशेषण तो हो सकता है, संज्ञा नहीं हो सकता। इससे स्पष्ट है कि 'सिन्धु' या 'हिन्दु' ही हमारी प्राचीन संज्ञा है। उसमें चार वर्ण तथा अवर्ण अन्तर्भूत हो जाते हैं। यही व्यापक नाम है, जिससे इस देशकी सब ब्राह्मणादि चाण्डालान्त जातियोंका ग्रहण हो जाता है। 'आर्य' यह तो एकदेशी नाम है। इससे केवल ब्राह्मण या ब्राह्मण-क्षत्रियोंका ही ग्रहण सम्भव है। न तो इससे शूद्र लिए जा सकते हैं, न तो चाण्डालादि अवर्ण ही।

आर्य ईश्वर-पुत्र

३३ कई वादिगण 'आर्याय' का 'ईश्वरपुत्राय' यह अर्थ 'निरुक्त' (६।२।३) में देखकर 'आर्य' शब्दका प्रयोग हमारी जातिके लिए करना ठीक मानते हैं, उनसे पूछना चाहिए कि 'शूद्रका नाम अनार्य है'

(सत्यार्थप्र० १४० पृष्ठ) यह स्वामी दयानन्दजीकी उक्ति शुद्ध है या अशुद्ध ? यदि अशुद्ध, तो आपके स्वामीजी अनाप्त हो गये। यदि उक्त उक्ति शुद्ध है, तो ब्राह्मणादिका नाम 'आर्य' सिद्ध हुआ, शूद्रादि का नहीं, तब शूद्र एवं चाण्डालादि तथा ईसाई या मुसलमान भी ईश्वरपुत्र हैं या नहीं ? यदि नहीं, तो इसमें क्या प्रमाण है ? यदि हैं, तो आप इनको 'आर्य' कहते या मानते हैं या नहीं ? यदि मानते हैं, तो आपके मतप्रवर्तक स्वामी दयानन्दजीका वाक्य व्याकुपित होता है। तब 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' इस मन्त्रका भवत्सम्प्रदायाभिमत अर्थ कि 'सारे जगत् को आर्य बनाओ' भी अशुद्ध सिद्ध होता है। यदि वे वास्तवमें 'ईश्वरपुत्र' हैं, तो उनको 'ईश्वरपुत्र' बनाना क्या ? यदि आप उनको 'आर्य' नहीं मानते, तो सिद्ध हुआ कि ईश्वर के पुत्र ब्राह्मण-क्षत्रियोंमें ही 'आर्यत्व' का व्यवहार है, अन्य शूद्र, चाण्डाल आदिमें नहीं। तब यह नाम एकदेशी सिद्ध हुआ। अतएव यह समस्त जातियों के लिए प्रयोगार्ह नहीं।

वास्तवमें 'निरुक्त' में 'आर्य' का जो 'ईश्वरपुत्र' अर्थ लिखा है, उसका रहस्य अन्य है, वह यह है कि 'निरुक्त' तथा उक्त मन्त्रमें 'आर्य' शब्द अण्प्रत्ययान्त 'अर्य' शब्दका विवक्षित है। 'अर्य' यह 'अर्यः स्वामिवैश्ययोः' (३।१।१०३) इस पाणिनिके सूत्रमें 'स्वामी' का नाम है। तब 'आर्य' शब्दका 'स्वामीका पुत्र' यह अर्थ वहां विवक्षित है। वहां पर 'ईश्वर' से स्वामी ही अभीष्ट है, परमात्मा नहीं। 'निरुक्त' आदि प्राचीन साहित्यमें परमात्म-वाचक ईश्वर शब्द आया ही नहीं। 'स्वामीश्वराधिपति' (२।३।३९) इस सूत्रमें ईश्वर शब्द स्वाम्यर्थक ही है। इसी प्रकार 'सं समिद् ''अर्यः' (ऋ० १०।१९१।१) इस मन्त्रमें अर्यशब्द स्वामिवाचक ही है, जैसा कि सायणाचार्यने लिखा है—'हे अग्ने ! अर्यः—ईश्वरस्त्वम्, 'अर्यः स्वामिवैश्ययोः' इति यत्प्रत्यय-यान्तो निपातितः। 'अर्यः स्वाम्याख्यायाम्' (फि० सू० ३।१८) इत्य-

न्तोदात्तत्वम्।' यहाँ परमात्मार्थका कोई प्रकरण नहीं। तब निरुक्तस्थ मन्त्रसे वादियों की कोई इष्टसिद्धि नहीं, क्योंकि उन्हें 'आर्य' शब्द 'अण्' प्रत्ययान्त इष्ट नहीं होता, किन्तु ण्यत् प्रत्ययान्त ही इष्ट होता है। तब जातिवाचक अर्थमें उसका प्रयोग ऐकदेशिक होने से नहीं हो सकता।

हिन्दुशब्दका चोर-डाकू अर्थ

२४ जो कि स्वामी दयानन्दजीने 'भ्रान्तिनिवारण', 'वेदविरुद्धमत-खण्डन' तथा १८७५ के सत्यार्थप्रकाश' (३ समु० पृ० ६७) में हिन्दु शब्द के 'चोर, काफिर, गुलाम, दुष्ट, नीच, कपटी, छली' इत्यादि अर्थ किये हैं, उनसे प्रष्टव्य है कि आपने ये अर्थ किस व्याकरण या कोष से किये हैं? यदि निज कल्पित ही ये अर्थ किये हैं, तो प्रमाण-शून्य होने से उनका यह वचन अप्रमाण हो गया। जो कि स्वामीजी ने लिखा हैं—'आर्य नाम श्रेष्ठ का है और जो हिन्दु नाम इनका रखा है, सो मुसलमानोंने ईर्ष्यासे रखा है, उसका अर्थ है दुष्ट, नीच, कपटी, छली और गुलाम, इसमें यह नाम भ्रष्ट है, किन्तु आर्यों का नाम 'हिन्दु' कभी न रखना चाहिए' (प्रथम सत्यार्थप्रकाश ३ पृ० ६७)। यह बात भी निष्प्रमाण है कि मुसलमानों ने 'आर्य' शब्दके स्थानमें ईर्ष्यासे 'हिन्दु' नाम रख दिया। स्वामीजी या उनके अनुयायियोंने आज तक ऐसा प्रमाण नहीं दिया कि मुसलमानोंने अमुक संवत् या सन् में 'आर्य' यह नाम हटाकर उसके स्थानमें 'हिन्दु' यह नाम रखा हो।

यदि वे कहें कि 'ग्यासलुगात' में 'हिन्दु' शब्दके 'काफिर, चोर, गुलाम' इत्यादि अर्थ किये गये हैं, तो उनसे पूछना चाहिए कि क्या वह संस्कृतकोष है, जो माननीय हो जाय? उसी कारण से यदि आप हिन्दु शब्द को हटाते हैं, तो 'शरीर' शब्द को भी छोड़ दीजिये। उनके

मतमें 'शरीर' उपद्रवी को कहते हैं। तब तो 'देव' शब्दको भी छोड़ दीजिये, क्योंकि 'ग्यासलुगात' में 'देव' शब्द का अर्थ 'राक्षस' लिखा है और स्वामी दयानन्दजीने इसका अर्थ 'विद्वान्' लिखा है। अब स्वामीजीके अनुयायी कहें कि 'देव' शब्दका अर्थ आप 'ग्यासलुगात' का कहा हुआ मानेंगे या अपने स्वामीजीका कहा हुआ? यदि आप स्वामिप्रोक्त ही अर्थ मानेंगे और 'ग्यासलुगात' से कहे 'देव' शब्दके अर्थको अशुद्ध मानेंगे, तो वैसे ही 'हिन्दु' शब्दका भी 'ग्यासलुगात' का किया अर्थ भी अशुद्ध जानना चाहिये। तब उसका अनुयायी 'हिन्दु' शब्दका स्वामीजीका कहा हुआ पत्त भी अशुद्ध सिद्ध हुआ।

उसी 'लुगात' में 'राम' शब्द 'गुलाम' का वाचक है, जबकि वह हमारे मतमें 'रमन्ते योगिनोऽस्मिन् इति रामः' इस प्रकार परमात्माके अवतारविशेषका वाचक है। तब क्या आप लोग 'ग्यासलुगात' प्रोक्त अर्थ को ही मानेंगे? वास्तवमें यहाँ यह याद रखना चाहिए कि उच्चारण सादृश्यके कारण समानतासे दीख रहे हुए शब्दोंका भिन्न-भिन्न भाषाओंमें भिन्न-भिन्न अर्थ होना असम्भव या आश्चर्यजनक नहीं। पर इससे समानतासे दृश्यमान शब्द या वस्तुओंमें मौलिक एकता नहीं मानी जा सकती। यहां पर 'मार' शब्द 'सर्प' वाचक है, हमारी भाषा में वह 'कामदेव' वाचक है इस प्रकार अन्य भी बहुतसे शब्द हैं। इससे स्पष्ट है कि फारसीभाषीय 'हिन्दु' शब्दके साथ हमारे जातीय नाम 'हिन्दु' शब्दका कोई मौलिक सम्बन्ध नहीं है। भले ही उनका उच्चारण-सादृश्य क्यों न हो, पर दोनों ही शब्द एक दूसरे से सर्वथा, पूर्णतः एव मूलतः भिन्न ही हैं। यदि वादिगण यह बात न मानें, तो उन्हें 'आर्य' शब्दका प्रयोग भी छोड़ देना चाहिए, क्योंकि उसी 'ग्यासलुगात' में 'आर्य' शब्दका अर्थ 'घोड़े-गधेके पिछले भाग' का या अश्व-गर्दभादिकी शालाका नाम कहा है। तब तो उन्हें 'आर्य' शब्द

भी निकृष्टार्थ होने से छोड़ देना चाहिए। यदि वे नहीं छोड़ते, तो यहां निन्दित अर्थवाला होने पर 'हिन्दु' शब्द ही क्यों छोड़ा जाय ?

स्वामी दयानन्दजीने स्वयं ही स्वीकार किया है कि 'मुसलमानोंने ईर्ष्यासे ही ये अर्थ किये हैं', तब क्या वे माननीय हो जायंगे ? वे ही 'संस्कृतभाषा' को ईर्ष्यासे 'जिन्नभाषा' कहते हैं, जैसे कि प्रथम 'सत्यार्थप्रकाश' २९० पृ० में स्वामीजी लिख गये हैं। तब क्या संस्कृत भाषाको ही हमलोग छोड़ दें ? हमें यह चिन्ता छोड़ देनी चाहिए कि कइयों ने इसका घृणित अर्थ किया है। घृणित अर्थ किया हो किन्हींने इसका, पर इस नामकी उत्पत्ति घृणाके कारण नहीं हुई। इसकी उत्पत्ति सिन्धुदेशोत्पत्ति के कारण हुई है, यह कहा जा चुका है। उसके बाद हमारी वीरता से हानि प्राप्त करके प्रतीकार करने में असमर्थ हुए कई मुसलमानोंने 'अशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते' इस न्यायसे उसका घृणित अर्थ कर दिया हो, तो इससे उस नाम की त्याज्यता नहीं हो जाती। इङ्गलैण्ड में ही एक ऐसा समय था कि जब 'इङ्गलिशमेन' शब्दका अर्थ वहांके विजेता नार्मन जाति वालोंने घृणित कर डाला था। 'मैं तब 'इङ्गलिशमेन' कहाऊँ, जब मैं अमुक पाप करूँ' इस प्रकार शपथरूपमें वे इसका प्रयोग करते थे। नार्मन जाति वालेको तभी 'इङ्गलिशमेन' कहा जाता था, जबकि उसका अपमान करना होता था या वही किसी असभ्य अपराधको करता था। इस प्रकार घृणा उत्पन्न करने पर भी इङ्गलैण्ड निवासियोंने अपना नाम 'इङ्गलिशमेन' ही रखा, 'नार्मन' नहीं। क्या नाम-परिवर्तनसे इङ्गलैण्ड का अपमान दूर हो जाता ? क्या इङ्गलैण्ड का पराजय विजयरूप में परिणत हो जाता ? कभी नहीं। 'इङ्गलिशमेन' इस दूसरोंसे घृणास्पदीकृत भी नाम को न छोड़ने का फल यह हुआ कि आज वही 'इङ्गलिशमेन' नाम इङ्गलैण्डकी कीर्तिका सूचक माना जाता है। आज 'नार्मन' जाति

का अस्तित्व भी नहीं है। 'इङ्गलिशमेन' नाम धारण करने वाले आज विश्वके साम्राज्यमें सर्वोत्कृष्ट स्थान को प्राप्त किये हुए हैं। यह है अपने नाम को न छोड़ने का महत्त्व। पारस्परिक कलहोंमें राष्ट्रोंकी बुद्धि व्यवस्थित नहीं रहती। अपने शत्रुको कलङ्कित करनेके लिए वे सभी दृष्ट-अदृष्ट उपायोंका अवलम्बन करते हैं। तब पर्शियन एवं मुसलमान आदिकोंके लिए भी स्वाभाविक था कि वे हिन्दु शब्दका घृणित अर्थ करते। क्या हमीं लोग 'जिन, मुसलमान, मुसण्डा' आदि शब्दोंको उनसे ईर्ष्याके कारण घृणित अर्थोंमें प्रयुक्त नहीं करते? परन्तु क्या उन्होंने इससे अपना नाम बदल दिया? आज भी 'जिनोपासक' अपने आपको 'जैन' ही कहते हैं।

वस्तुतः फारसी भाषामें भी 'हिन्दु' शब्दका अर्थ तो निकृष्ट नहीं लिखा है, केवल लक्षणा से वे चोर आदि अर्थमें उसका प्रयोग करते हैं। 'अर्बीकोष' में 'हिन्दु' का अर्थ 'खालिस' 'शुद्ध' है। यहूदी लोग 'हिन्दु' शब्दका अर्थ 'शक्तिशाली वीर पुरुष' करते थे। प्राचीन अरब निवासी भी हमारे देश को 'हिन्द' नामसे जानते थे, तभी उन्होंने हमारे देशसे निष्पन्न 'अङ्कगणित' का नाम 'हिन्दसा' रखा है। 'कुरान' में तो 'हिन्दु' शब्दका ही अभाव है। वहां 'काफिर' शब्दसे 'मुसलमानधर्मविरुद्ध' ही अभिप्रेत है। इस प्रकार तो उनके अनुसार आर्यसमाजी आदि भी काफिर हैं। क्या इससे वे अपना नाम या धर्म छोड़ देंगे? 'बहारे आजम लुगात' में 'हिन्दु' शब्द हिन्दुस्थानवासियों में भी प्रयुक्त है। उससे भी प्राचीन लुगातकार 'खाने आरजू' कहता है—'हिन्दु एक विशिष्ट जाति है।' 'फरहङ्ग लुगात' में भी 'हिन्दु' शब्द जातिबोधक स्वीकृत किया गया है 'गयासुल लुगात' में भी 'हिन्दु' शब्द 'हिन्दुस्तान-वासियों' में स्वीकृत किया गया है। प्राचीन 'बेबिलोनिया' निवासियोंके साहित्यमें 'हिन्दु' शब्द 'हिन्दुराष्ट्रवासियों' में प्रयुक्त है, अपमानसूचक अर्थ में नहीं।

३९ अथवा उनके कोषमें हमारे शब्दोंका यदि निन्दित अर्थ भी लिखा गया है, तो उसका त्याग बुद्धिमत्ता नहीं है। 'दस्त' शब्द हमारी भाषामें 'दस्त' (विरेचन) वाचक है, अतः घृणित है, पर उनकी भाषामें 'हाथ' वाचक है। वे हमारी भाषामें 'दस्त' शब्दका निन्दित अर्थ होने पर भी उसका त्याग नहीं करते। उसी दृढताके फलस्वरूप हिन्दुओंमें भी 'दस्त' शब्द 'दस्तखत' शब्दरूपमें प्रचलित हो गया है। पर आपलोग 'हिन्दु' इस अपने शब्दको भी छोड़ रहे हैं, उसका फल भी वैसा हो रहा है। अब दूसरे लोग हमें या आपको 'हिन्दु' शब्द या 'आर्य' शब्दसे न कहकर 'नान मुहम्मडन', 'नान मुसलिम', 'अमुसलिम' शब्दसे पुकारते हैं। औरों को छोड़ दीजिये, हमसे भी 'हिन्दु' शब्द छूट रहा है। 'सिख' 'हिन्दु' नाम नहीं लिखाते, इस प्रकार 'जैनी' आदि भी। यही अपने शब्दको छोड़ देनेका एवं शिथिलता का परिणाम है, जो कैसे खेदका विषय है? यदि हिन्दु शब्द घृणापरक होता; तो पृथिवीराज, जयसिंह आदि अभिमानी वीर राजा इस नामको गौरवसे न लेते। देखिये—'पृथिवीराजरासो' आदिमें उसका प्रयोग। परन्तु वे गौरवसे उस नामको लेते थे, तब वादियोंकी उक्त उक्ति ठीक नहीं। अन्यथा हमने उनसे प्रयुक्त और घृणित 'काफिर' शब्द ही क्यों नहीं स्वीकृत कर लिया, जिसे उन्होंने हमारे लिये प्रयुक्त किया था? क्यों नहीं हमने उससे अपना गौरव माना? इससे स्पष्ट है कि हिन्दु शब्द हमारा ही है। मुसलमानों को चाहे उससे घृणा हो, परन्तु हमारे पूर्वज उस नामका राष्ट्रिय महत्व तथा उसकी आदिमत्ता जानते थे, इसीलिए उसका प्रयोग करते थे।

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'

२६ जो अपने आपको 'आर्य' मानने वाले 'इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो अराव्णः' (ऋ० ९।६३।५) इस मन्त्रसे सारे जगत्को आर्य बनानेका स्वप्न देखते हैं; उन्हें यह जानना चाहिए कि यहां पर 'आर्य' शब्द श्रेष्ठका वाचक है, जातिपरक नहीं। जातिपरक अर्थ करने वाले व्यक्ति 'ऋग्वेद' का कोई भी प्राचीन भाष्य अपने पक्षके समर्थनमें दिखलायें। वेदके अर्थ देवतावादके अनुसार हुआ करते हैं, स्वेच्छानुसार नहीं। 'देवता' यह वर्ण्य विषयका ही अनुक्रमणिका के अनुसार पारिभाषिक नाम होता है। जैसे कि 'बृहद्देवता' में लिखा है—'संवादेष्वाह वाक्यं यः स तु तस्मिन् भवेद् ऋषिः। यस्तेनोच्येत वाक्येन देवता तत्र सा भवेत्' (१।१८) वेदमन्त्रोंका अर्थ देवताके अनुसार हुआ करता है। इस मन्त्रका, प्रत्युत सारे मण्डलका पवमान सोम देवता है। तब यहां पर वर्णन भी उसीका होना चाहिए। इस मण्डलमें 'सोम' बहुवचनमें भी आया है, एकवचन में भी। कहीं सोमशब्द सोमाभिमानी देवताका वाचक है, जिसका 'ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा' (ऋ० १०।९७।२२) इस मन्त्रमें संकेत आया है, कहीं सोमरसका वाचक है। इस मन्त्रमें ऋ० ९।६३।४ से 'एते सोमाः' की अनुवृत्ति चल रही है। तब यह अर्थ हुआ कि 'एते सोमाभिमानिदेवाः, विश्वं-सर्वं सोमम् आर्य-श्रेष्ठं अस्माभिर्द्विजैः प्राप्तव्यं, यज्ञोपयुक्तं कुर्वन्तः अभ्यर्षन्ति-प्राप्नुवन्ति।' यहां पर 'आर्य' शब्द जातिवाचक नहीं, क्योंकि वैसा कोई प्रकरण नहीं। इसलिए सायणाचार्यने उक्त सम्पूर्ण मन्त्रका यह अर्थ किया है—'इन्द्रं वर्धयन्तः, अप्तुरः-उदकस्य प्रेरकाः, विश्वं सोमम् अस्मदीयकर्माथम् आर्य-भद्रं कुर्वन्तः, अराव्णः अदातॄन् अपघ्नन्तः विनाशयन्तः, अभ्यर्षन्ति अभिगच्छन्ति।' उक्त मन्त्रमें 'विश्वं' शब्दका 'सोम' से सम्बन्ध करनेमें

कारण यह है कि वह सोम विश्वरूप है। 'विश्वचर्षणिः' (ऋ० ९।१।२) यहां उसे विश्वका द्रष्टा, 'पवस्व विश्वचर्षणे !' (९।६६।१) यहां उसे सर्वव्यापी होनेसे सर्वद्रष्टा, 'विश्वजित् सोम !' (९।५६।१) 'विश्वायुः' (९।८६।४१) यहां उसे विश्वजित् तथा सर्वगन्ता 'विश्वदेवः' (९।६८।२, ९।१०३।४) यहां सोम सर्वदेवोंमें उपगत वा व्यापक दीप्तियुक्त स्वीकृत किया गया है। इसीलिए उसे उक्त मन्त्रमें भी 'विश्व' शब्दसे कहा गया है; अतः सायणकृत अर्थ ठीक ही है। तब देवतावाद से विरुद्ध अर्थ करते हुए वादी निरस्त हो गये।

जो व्यक्ति उक्त मन्त्रसे सारे संसारको आर्य बनानेका स्वप्न देखते हैं; वे तो वैदिक-ज्ञान-शून्य हैं। वे अनार्यों को आर्य कैसे बना सकते हैं ? यदि उक्त मन्त्रसे वैसा माना जाय, तो यह ठीक नहीं। उक्त मन्त्रका ठीक तथा प्राकरणिक अर्थ हमने दिखला ही दिया है, इधर हम पहले बता आये हैं कि 'आर्य' शब्द समस्त-हिन्दुवाचक नहीं, किन्तु ब्राह्मण-क्षत्रियवाचक है। अधिकसे अधिक त्रैवर्णिक वाचक है। चतुर्थ शूद्रवर्ण तथा पञ्चम अवर्ण ये वेदानुसार आर्य नहीं, किन्तु दास एवं दस्यु हैं। दास या दस्युको आर्य बनाना वेदसम्मत नहीं, किन्तु वेद विरुद्ध है। तभी 'ऋग्वेद' में कहा है—'न यो ररे आर्यं नाम दस्यवे' (ऋ० सं० १०।४९।३) 'दस्यवे अनार्याय, शूद्रनिषादादिकाय अहम्-इन्द्र आर्यं नाम, न ररे—न दत्तवान् ।' तब फिर 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' इसका 'सारे जगत् को आर्य बनाते हुए' यह अर्थ करना वेदविरुद्ध है।

'यया दासानि आर्याणि वृत्राकरो.' (ऋ० ६।२२।१०) इस मन्त्रसे भी हमारे पक्षका विरोध नहीं है, जैसे कि कई इसमें दासोंको आर्य बनाना सिद्ध करते हैं, यहां 'दासानि', 'आर्याणि' ये पद नपुंसक-लिङ्गान्त हैं, इसलिए यहां शूद्रजाति या आर्यजाति अर्थ नहीं है, किन्तु यहां यौगिक ही अर्थ है। इसीलिए यहां सायणाचार्यने अर्थ लिखा

है—'हे इन्द्र! स्वस्तिं-क्षेमलक्षणां सम्पदं नो—अस्मभ्यमाभर, तया स्वस्त्या, दासानि-कर्महीनानि मनुष्यजातानि, आर्याणि-कर्मयुक्तानि अकरोः, नाहुषाणि-मनुष्यसम्बन्धीनि वृत्राणि-शत्रून् शोभनहिंसोपेतानि अकरोः।' नपुंसकलिङ्गवाला आर्य शब्द हमारी जातिका नाम नहीं है, यहां पर 'अभियात् दासा वृत्राणि आर्या च शूर! वधीः' (ऋ० ६।३३।२) यह मन्त्र भी साक्षी है। यहां आर्योंका भी वध (मारना) कहा है। वस्तुतः एतदादि स्थलमें यौगिकरूपसे अर्थ है। इसीलिए सायणाचार्यने लिखा है—'हे इन्द्र! तान् उभयविधान् शत्रून् अहिंसीः; दासान्-उपक्षयितॄन् वलप्रभृतीन् असुरान्, आर्याणि-कर्मानुष्ठातृत्वेन श्रेष्ठानि वृत्राणि-आवरकाणि विरयरूपादीनि, च हे शूर! त्वं हतवान्।' इसी प्रकार 'आर्याय विशोऽवतारीर्दासीः' (ऋ० ६।२५।२) यहां पर भी सायणने लिखा है—'हे इन्द्र! आभिरस्मदीयाभिः स्तुतिभिः दासीः-कर्मणामुपक्षयित्रीः, विरवाः सर्वा विशः-प्रजाः, आर्याय-यज्ञादिकर्मकर्त्रे यजमानाय अवतारीः-विनाशय' इससे स्पष्ट है कि कहीं दास, आर्य आदि शब्द यौगिक हैं, विरवरूप आदि दैत्योंके लिए प्रयुक्त किये गये हैं, जिन्हें इन्द्रने मारा था! कहीं योगरूढ भी हैं। फलतः दस्यु—दास को आर्य बनाना वेदसे विरुद्ध है। यदि 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का वादियोंके अनुसार यह अर्थ हो कि—ईसाई मुसलमानादि सबको आर्य बनाते हुए, तो यहाँ प्रश्न यह है कि वेदकालमें सभी आर्य थे वा अनार्य भी थे? यदि तब सभी आर्य थे, कोई भी अनार्य नहीं था; तो आर्योंको आर्य बनाना पिष्टपेषण की तरह व्यर्थ कहा गया। यदि तब अनार्य भी थे; तो सृष्टिके आदिमें उन्हें परमात्माने ही पैदा किया, या वे पीछे हुए? यदि परमात्माने ही बनाये; तब उन्हें आर्य बनाना परमात्मासे विरुद्ध है, अन्यथा वह उन्हें बनाता ही नहीं। यदि वे पीछे अनार्य होगये; तो वेदमें उनका वर्णन कैसे? क्या वादी वेदमें भविष्यत्का इतिहास भी मानते हैं।

इसी तरह 'विजानीहि आर्यान्, ये च दस्यवः' (ऋ० १।५१।८) 'हत्वी दस्यून् प्र-आर्यं वर्णमावत्' (ऋ० ३।३४।६), यहाँ पर वेद अनार्योंको आर्योंसे पृथक् ही रखना चाहता है। इससे यह स्पष्ट है कि अनार्योंकी आर्यता नहीं हो सकती, अन्यथा 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' इस मन्त्र तथा उक्त मन्त्रोंका परस्पर विरोध हो जायगा। तब व्याघात हो जाने से वेदका ही अप्रामाण्य प्रसक्त हो जायगा।

'हिन्दु' शब्द अवैदिक (?)

१७ कई आर्यसमाजी आदि कहते हैं कि 'यद्यपि भविष्यपुराण तथा कालिकादि पुराणोंमें 'हिन्दु' शब्द दिखलायी देता है, पर चारों वेदोंमें दिखायी नहीं देता, इसलिए वह अप्रमाण तथा अव्यवहार्य है'। इस पर यह जानना चाहिए कि वेदमें तो परमात्माके 'सच्चिदानन्द, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, सृष्टिकर्ता, सृष्टिधर्ता, सृष्टिहर्ता, इत्यादि स्वामी दयानन्दजीके 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' (प्रथम संख्या) में कहे हुए तथा 'सत्यार्थप्रकाश' (प्रथम समुल्लास) में कहे हुए परमात्माके नामोंमें भी कई 'परमेश्वर, गणेश, अन्तर्यामी, भौम, शनैश्चर' आदि नाम भी नहीं आते। तब इनका बहिष्कार क्यों नहीं किया जाता? उनके माने हुए वेदमें आर्यसमाज, गुरुकुल, संन्यास (देखो आर्यमित्र ३।६।४३। पृ० ७ संन्यासका वेदोंमें पता नहीं है) दयानन्द, डी. ए. वी. कालेज आदि नाम भी नहीं आते, तब इनका बहिष्कार क्यों नहीं किया जाता? क्यों आर्यसमाजी अपना नाम संन्यासी रखते हैं? क्या यह स्वार्थ नहीं?

(७) 'अर्वाचीन 'हरिजन' शब्द

(८) जो लोग 'हिन्दु' शब्दको अर्वाचीन बतलाकर 'हिन्दु' शब्दके प्रयोगमें सङ्कुचित होते हैं, वे आजकल गांधीजीसे प्रचलित 'हरिजन' इस चाण्डालादिस्थानीय शब्दके प्रयोगमें सङ्कुचित क्यों नहीं होते ? क्या वेदमें इनके लिए 'हरिजन' शब्द प्रयुक्त है ? क्या यह अर्वाचीनतम नहीं ? जब 'भङ्गी' आदिकोंकी 'चाण्डाल' संज्ञा वैदिक है, स्वामी दयानन्दजी भी जब इसीको स्वीकार करते हैं, तब उसके लिखनेमें ही उन्हें क्या सङ्कोच है ? वास्तवमें ये लोग स्वेच्छाधर्मी हैं। जो लोग कहते हैं कि 'निम्बार्कमतनिर्णय' के ३४ वें पृष्ठकी पञ्चम पङ्क्तिमें लिखा है—'कृष्णोत्सवसमायातान् दृष्ट्वा हरिजनान् यथा, यत्र। नैव कार्याऽशुचेः शङ्का पुण्यास्ते भक्तिसंयुताः' (१२०), 'सर्वे विप्रसमा ज्ञेयाः श्वपचाद्या अपि संशयः। ये कुर्वन्ति दिने विष्णोर्जागरं गीतकीर्तनम्' (१२८) यहां श्वपच (चाण्डाल) आदिकोंकी 'हरिजन' संज्ञा कही है। (यह बात देहलीके 'बिड़ला-मन्दिर' के बाहर दीवार पर लिखी है)। परन्तु यह ठीक नहीं है। यहां 'हरिजनाः' यह शब्द हरिके भक्त—ब्राह्मणादि के लिए आया है। जो कृष्णोत्सवमें आ जाय उनमें कोई अस्नात होनेसे अशुद्ध हो वा सूतकाशुद्धियुक्त हो, तो यहां इस बातका विचार न करना चाहिए। यहां अन्त्यजोंका कोई वर्णन नहीं है। दूसरा पद्य स्वतन्त्र है। 'तत्र ये श्वपचाद्या विष्णोः कीर्तनं कुर्वन्ति ते विप्रसमा ज्ञेयाः' यहां श्वपचोंको नामकीर्तन करने पर अर्थवादसे विप्रसम कहा है। नाम-कीर्तनमें सब समान अधिकारी हैं, यह इसका हृदय है। यहां उन श्वपचोंकी 'हरिजन' यह विशिष्ट संज्ञा नहीं कही गयी। इसमें शास्त्रान्तरोंकी व्याकोप भी है, लोकविरुद्धता भी, क्योंकि 'हरिजन' क्या केवल भङ्गी चमारोंका ही नाम हो सकता है ? क्या विष्णुके जन अन्त्यज ही हो सकते हैं, शेष चार वर्ण नहीं ? अन्त्यजोंके हरिजनत्वमें कोई विनिगमक नहीं। इधर 'निम्बार्कमतनिर्णय' निम्बार्कमतं पक्षियोंका

ऐकदेशिक ग्रन्थ है। न तो यह लोकव्यवहार-व्यवस्थापक स्मृति है, न ही सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सर्वसम्प्रतिपन्न ग्रन्थ है।

यदि 'हरिजन' यह अन्त्यजोंका नाम सर्वशास्त्रमान्य होता, तो वेदों, स्मृतियों, पुराणोंमें उनके लिए वैसा प्रयोग होता। परन्तु नहीं है। तब ऐकदेशिक ग्रन्थविशेषके बलसे उनका यह शास्त्रीय नाम कदापि नहीं हो सकता। वैष्णवोंके ग्रन्थ भी प्रायः ऐकदेशिक ही हैं। उनमें भक्तिभाव को मस्तीमें कहीं शास्त्रीय मर्यादाएँ भी तोड़ दी गयी हैं। पर यह अनिष्ट है। और फिर 'हरिजन' यह शब्द अन्त्यजोंके लिए ही होता, तो द्वितीय पद्यमें 'श्वपचाद्याः' यह शब्द न होकर 'हरिजनाः' होता। ऐसा न होना सिद्ध कर रहा है कि हरिजन उनका नाम नहीं, किन्तु हरिभक्तमात्रका नाम है। गांधीजी द्वारा अन्त्यजोंका उक्त नाम कर देनेसे अब द्विजलोग अपने आपको 'हरिजन' कहते सकुचाते हैं, यह लौकिक हानि भी बहुत हुई है।

कई आक्षेप

२६ (क) प्रसक्तानुप्रसक्त यह बात कही गयी है। अब पाठक प्रकरण पर आयें। हम पहले सिद्ध कर चुके हैं कि वेदमें हमारी जाति का नाम 'सिन्धु' बहुत स्थलोंमें आता है, उसीका विपरिणाम 'हिन्दु' है, यह विपरिणाम भी प्राचीन, वैदिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक एवं देशी भी है। तब 'हिन्दु' शब्दकी वैदिकता भी सिद्ध हो गई। कई लोग इस पर यह आक्षेप करते हैं कि 'यदि 'सिन्धु' शब्दके अपभ्रंशसे 'हिन्दु' शब्द निष्पन्न है, तो उसका सर्वव्यापी प्रयोग नहीं हो सकता, क्योंकि अपभ्रष्ट शब्द सार्वत्रिक नहीं होते। जैसे—गोशब्दका अपभ्रंश किसी देशमें 'गावी' प्रसिद्ध है, कहीं 'गोणी' तथा कहीं 'गोपोतलिका'। इनका प्रयोग सार्वत्रिक नहीं। परन्तु 'हिन्दु' शब्द ऐसा नहीं। इसको सब इसी रूपमें बोलते हैं, अत: 'अपभ्रंश' पक्ष ठीक नहीं।' इस पर

हमारा उत्तर यह है कि यह आवश्यक नहीं कि अपभ्रष्ट शब्द सर्वत्र प्रचलित न हों। देखिये—प्राकृतभाषा भी तो संस्कृतसे अपभ्रंष्ट हुई भाषा है। परन्तु इसका प्रयोग सर्वत्र समान रूपसे होता है। अथवा उसमें भी शौरसेनी, मागधी आदि भेद भले ही पड़ जांय, पर मुख्य शब्दोंका उच्चारण उनमें भी प्रायः समान होता है। अथवा संस्कृतसे अपभ्रष्ट हिन्दी-भाषाको ही ले लीजिये। यदि इसका प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ता जाय, तब 'गौ' का अपभ्रंश 'गाय' सर्वत्र प्रचलित हो जाय। इसका अन्य उदाहरण भी ले लीजिये—विरोचनके पिता हिरण्यकशिपु के पुत्रका 'प्रह्राद' इस प्रकार रेफघटित मूल नाम है। परन्तु अप-भ्रंशवश उसका विपरिणाम 'प्रह्लाद' इस प्रकार लकारघटित रूपमें हो गया है, यहाँ तक कि लोग उसके रेफघटित मूल नामको ही भूल गये। इस प्रकार वेनके लड़केका नाम वेदमें 'पृथी' मिलता है, परन्तु उसका विपरिणाम पुराणोंमें 'पृथु' मिलता है और वह सर्वत्र प्रचलित हो गया है। इस प्रकार 'सिन्धु' के विपरिणाम 'हिन्दु' शब्दके विषय में भी जान लेना चाहिए। इसका इस प्रकार प्रचार हो गया कि लोग इसके मूलभूत 'सिन्धु' शब्दको भी भूल गये।

(ख) कई लोग कहते हैं कि 'औणादिक प्रत्यय किया 'डिंया, डोलना, डुल्क। 'मा' धातुसे साध लिया 'मिंया, मोलना, मुल्क' इस प्रकारकी उणादि व्युत्पत्तियां आदृत नहीं की जातीं। इस पर जानना चाहिए कि इससे उणादि प्रत्ययोंका बाहुल्य ही सूचित होता है, उपहास वा अनादर नहीं। उपहास वा अनादर भी निर्मूल शब्दोंका सूचित होता है, समूलोंका नहीं। अन्यथा 'अमरकोष' आदिमें उणादिसे व्युत्पादित शब्द अनादरणीय सिद्ध हो जांय। पर यह अनिष्ट है।

(ग) कई यह आक्षेप करते हैं कि 'पहले तो आपने 'सिंधु' का विपरि-णाम 'हिंदु' दिखलाया है और फिर 'हिं कृण्वती' इस मन्त्रके पूर्वार्ध और

'दु हाम्' इस उत्तरार्धके आदिम वर्णोंसे 'हिंदु' शब्द सिद्ध किया है, यह तो परस्पर विरुद्धता हो गयी'। इस पर यह जानना चाहिए कि एक ही शब्दकी भिन्न-भिन्न प्रकारसे भी सिद्धियाँ हुआ करती हैं। यहाँ 'अमरकोष' के भिन्न-भिन्न टीकाकारोंकी समान शब्दोंकी भिन्न-भिन्न सिद्धिप्रक्रिया देखनी चाहिए, अथवा एक ही टीकाकारसे की हुई एक ही प्रयोगकी 'यद्वा' कहकर भिन्न-भिन्न शैलीसे की हुई सिद्धयां देख लेनी चाहिएं। 'सुधा' नामक 'अमरकोष' की टीकामें ऐसा प्रकार सुलभ है।

तब जो लोग 'हिन्दु' शब्दको मुसलमान या फारसियोंसे दिया जानकर उसका अपने साथ सम्बन्ध अपने अपमानका कारण जानते हैं, उन्हें उक्त प्रमाणोपपत्तियों को परिशीलित कर अपना आग्रह छोड़ देना चाहिए। इस नामसे कोल, भिल्ल, मङ्गोल, सिख, जैन, बौद्ध आदि जातियाँ तथा चाण्डाल आदि अवर्ण जातियाँ इस महाजातिके अन्तर्गत हो जाती हैं। अन्यथा जनगणना (मर्दुमशुमारी) के समय कोई अपने आपको 'हिन्दु' लिखाये, कोई 'आर्य', कोई 'सिख', कोई 'जैन'। इस प्रकार पृथक् पृथक् लिखवानेसे हिन्दुओंकी संख्याकी न्यूनता सुनकर विधर्मी लोग उपहास करें और उनका हिन्दु जाति पर आक्रमणके लिए उत्साह बढ़ जाय—इस प्रकार 'हिन्दु' नाम छोड़ने पर विषम दुष्फल मिल सकता है।

उपसंहार

४० इस प्रकार जब शूद्र, वर्ण होकर भी आर्य सिद्ध न हो सके, तब अवर्ण या वर्णसङ्कर 'आर्य' कैसे हो सकते हैं? इस प्रकार 'आर्य' शब्द एकदेशी सिद्ध हुआ, इसलिए वह हमारी समष्टि जातिका नाम भी नहीं हो सकता। पर 'हिन्दु' शब्द तो भारतीय सब जातियोंका प्रतिपादक है, अतएव व्यापक सिद्ध हुआ। इधर वह प्राचीन या वैदिक है यह भी बतलाया जा चुका है। अतएव उसका ही प्रचार श्रेष्ठ है।

जनगणना (मर्दुमशुमारी) के समय सभी इस जाति वालोंको 'हिन्दु' यही नाम लिखाना चाहिए। आर्यसमाजी तो 'हिन्दु' शब्दको सनातनधर्मियोंमें रूढ मानकर उस भयसे ही कि 'हमने भी यदि ऐसा किया, तो हमें भी हिन्दुओंके सिद्धान्त स्वीकार करने पड़ जावेंगे' इस 'हिन्दु' शब्दका बहिष्कार करते हैं और आर्यसमाजकी उन्नति दिखलाने के लिए 'आर्य' शब्दको प्रसारित करनेमें उत्सुक रहते हैं। यही वास्तविक रहस्य है कि वे बहुत तरहकी युक्तियोंसे 'हिन्दु' शब्दको हटाना चाहते हैं। वे उक्त रहस्यको स्पष्ट रूपसे तो प्रकाशित नहीं करते, किन्तु अपने हृदयके भीतर छिपाकर रखते हैं। बाहरसे तो 'हिन्दु' शब्दको वैदेशिक सिद्ध करनेमें बहुत बल लगाते हैं। वास्तवमें उनको उक्त भय छोड़ देना चाहिए और उदारता अवलम्बन करनी चाहिए, सङ्कीर्णताको हटा देना ही उचित है। अपने जातीय 'हिन्दु' नामके लिए स्वार्थका त्याग कर देना चाहिए।

फलतः हमारे देशका नाम 'हिन्दु' है, उसीका अपभ्रंश 'हिन्द' है। हमारी जातिका नाम भी देशके अनुसार 'हिन्दु' है। हमारी भाषाका नाम हिन्दी भाषा है। स्वामी दयानन्दजीने तो 'प्रथम-संस्कारविधि' (सं० १९३२-३३) में इस हिन्दी भाषाका नाम 'प्राकृत भाषा' रखा था, 'आर्यभाषा' नहीं। इस प्रकार 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में भी।

फलतः सब पुरुषोंको स्वस्वार्थ-त्यागकर अपना जातीय नाम 'हिन्दु' यह रखना चाहिए। सब हिन्दु पुरुषोंको जनगणना समयमें इसी नाम का प्रयोग लिखानेके लिए प्रेरणा करनी चाहिए, जिससे 'हिन्दुस्थान' भी उसीकी सम्पत्ति सिद्ध हो।

———